



* ओ३म् *

स्वधया परिहिता श्रद्धया पर्यूढ़ा दक्षया गुप्ता यज्ञे प्रतिष्ठिता लोको निधनम् । अ०कां०१२अनु.५मं०३



भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास

और उसकी सभ्यता।

अथवा भाषा-रामायण का उपोद्घात



(लेखक—श्री बाबूराम शर्म्मा)

आर्य्यभास्करयन्त्रालय आगरा में मुद्रित
आर्यवत्सर १९७२९४९००८ पौष संवत् १९६४ विक्रमी ॥

प्रथम वार १०००] [मूल्य प्रति पुस्तक ॥)

समर्पण।

वैदिक धर्म के रक्षक और अवैदिक मतों के मूलोच्छेदक धर्मवीर पं० लेखराम जी आर्य्यपान्थ ! यद्यपि इस समय आपका पञ्चत्व-शरीर संसार में विद्यमान नहीं, तथापि विरोधियों के आघातों से आहत हुई आर्य्यसमाज-रूपी-चमू आपकी संगृहीत सामग्री से ही महर्षि प्रदर्शित वैदिक-दुर्ग की रक्षा कर रही है । जिस समय वैदिक-धर्म्म विद्वेषी मतवालों ने इस गढ़ को नष्टभ्रष्ट करने का दृढ़ सङ्कल्प करके चहुंओर से इसके ऊपर आक्रमण कर दिया था तो आपने बलिदान की वह परिखा, जो रक्षार्थ इसे परिधाकार घेरे हुये है, जल के अभाव में अपने रक्त से परिपूर्ण करदी थी, जिसका अगाध-लोहित-जल संसार में आर्य्यसमाज के विद्यमान रहते हुये कदापि परिशुष्क न होगा।

यावनी छुरी से आहत होकर मृत्यु-शय्या पर पड़े हुये भी वेद प्रचार की ही चिन्ता में संलग्न होना, और असह्य शारीरिक वेदना की उपेक्षा करते हुये उपस्थित आर्य्य भद्र-पुरुषों को यही आदेश करना कि—

आर्यसमाज से तहरीर का काम बन्द न होने पावे।

वैदिक धर्म के प्रति आपके अगाध प्रेम और निष्कपट अनुराग का सर्वत्र विकाश कर रहा है । आपके शुद्धान्तःकरण से निकले इन्हीं उपर्युक्त वाक्यों से प्रेरित हो मैंने यह छोटा सा निबन्ध लिखने का साहस किया है, अतएव इसे आपकी अजर, अमर, एवं निर्मल और पवित्रात्मा के प्रति सादर समर्पण करता हूं ।

आपका पद-रज

बाबूराम शर्म्मा

* ओ३म् *

॥ अनुभूमिका ॥

मनुष्य-समाज में भूतपूर्व महान् पुरुषों के इतिवृत्त जानने की स्वाभाविक अभिलाषा पाई जाती है इसीलिये प्रत्येक कोटि के मनुष्यों में इतिहास का समादर है। आर्यावर्त्त के ऋषि महर्षियों ने अपनी दूरदर्शिता से, इतिहास की उत्कृष्टता का अनुभव कर, इसे मानवीय सृष्टि को निर्दोष बनाने का सांचा निश्चित किया था, तदनुकूल ही वे मानवीय जीवन को इस में ढाल कर अनुकरणीय बनाने का आदेश विस्पष्ट शब्दों में कर गये हैं। परन्तु शोक का स्थान है कि पतित-पावन सद्ग्रंथों का स्थान सम्प्रति विषय-वासनाओं के एक मात्र स्रोत और असम्भव गाथाओं के भाण्डार उपन्यास पुस्तकों ने ले रक्खा है जिन से मनुष्य समाज अनाचार के अन्ध-कूप में रात्रिन्दिवा गिरता चला जा रहा है॥

हमें कई आर्य्य सन्तानों के हाथों में ऐसी विषमयी पुस्तकें देख कर परम दुःख हुआ और उसी समय से प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थों को इस शैली पर लिखने का दृढ़ निश्चय कर लिया। प्रथम इस भाषा-रामायण नामक लघु पुस्तक का आरम्भ किया गया है और इस के आरम्भ में अनेक विद्वान् तथा आप्त पुरुषों के उपयोगी २ लेखों का, उपोद्घात-स्वरूप में इस कारण सङ्ग्रह कर दिया है जिस से न केवल आर्य्यसन्तानों का ही वैदिकधर्म में विश्वास दृढ़ हो; किन्तु आर्य्य-धर्मेतर पाठकों को भी इस धर्म में अनुराग उत्पन्न होजावे॥

इस पुस्तक में कोई बात किसी व्यक्ति, जाति वा सम्प्रदाय विशेष के प्रति निन्दा वा स्तुति सूचक नहीं लिखी गई है परन्तु अनुसन्धान से जो ज्ञात हुआ है उस का निष्कपट भाव से स्पष्ट शब्दों में वर्णन कर दिया गया है। यदि कोई महाशय हमारी वास्तविक भूल बतलावेंगे तो आगामी मुद्रण में उसे ठीक कर दिया जायगा और उन की इस दया के हम अत्यन्त आभारी रहेंगे॥

तारीख़ २५। १२। १९०७ ई० } बाबूराम शर्मा



॥ ओ३म् ॥

उपोद्घात ।

संसार के इतिहास पर एक सामान्य दृष्टि ।

जगत को ईश्वर ने रचा है ।

जिस समय हम किसी महान् आत्मा की जीविनी का अवलोकन करते हैं तो हमारे हृदय में यह प्रश्न स्वतः उत्पन्न होता है कि यह संसाररूपीनाटकशाला जिसमें अनेक पात्र सतत ऐसे ही अभिनय करते रहते हैं किसने और क्यों निर्माण की है ? संसार में इस प्रश्न की मीमांसा करने वाले मनुष्य दो भागों में विभक्त हैं अर्थात् एक 'नास्तिक' और दूसरे 'आस्तिक' नास्तिककोटि के मनुष्यों का यह सिद्धान्त है कि यह संसार स्वभाव* से उत्पन्न होकर अनादिकाल से ऐसा ही चला आरहा है, इसका बनाने वाला कोई नहीं है और आस्तिक दल बड़ी प्रबल यह युक्ति देकर कि कोई वस्तु विना कर्त्ता (बनाने वाले) के नहीं बनती ईश्वर के आस्तित्व का समर्थन करता है । वास्तव में आस्तिक दल की युक्ति (दलील) बड़ी प्रबल है और आज तक कोई अनैश्वरवादी उचित रीति पर इसका खण्डन नहीं कर सका, इसलिये यह मानना पड़ता है कि सृष्टि की सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान् से महान् वस्तुएं जिनके भीतर एक नियम काम कर रहा है, विना, निराकार, सर्वव्यापक और पूर्णज्ञानी कर्त्ता के उत्पन्न नहीं होसक्तीं और वही जगत् का कर्त्ता संसार में ईश्वर, ब्रह्म, परमेश्वर आदि असंख्य नामों से अपने अनन्त गुण, कर्म, स्वभावानुसार पुकारा जाता है ।

---

* प्रकृति में एक ऐसी आकर्षण शक्ति है कि वह अपने से अल्प परिमाण के प्राकृतिक पदार्थों को अपनी ओर खींचा करती है । यही शक्ति हमारे ४९६७ योजन परिधि के भूमिपिण्ड में इतनी प्रबल हो जाती है कि आकाश में उड़ने वाले पक्षी भी इससे आकृष्ट हो कर भूमि से इधर उधर नहीं जा सक्के । यदि भूमि में यह शक्ति न होती तो ऊपर को फेंकी हुई कोई वस्तु भूमि पर न गिरती वरन् जहां फेंका था वहीं स्थित रहती । यही शक्ति पाषाणादि पदार्थों को बढ़ाया करती है ॥

बहुत से लोगों का सिद्धान्त है कि जीवात्मा अनादि नहीं है और जिस प्रकार चूना और जल के संयोग से एक शक्ति उत्पन्न होती है उसी प्रकार जब पञ्चभूत परस्पर मिलते हैं तो एक चेतन शक्ति स्वतः उत्पन्न हो जाती है; परन्तु यह सिद्धान्त भी सत्य नहीं है क्योंकि मनुष्य के शरीर का बहुत सा भाग नष्ट होजाने पर भी हमलोग देखते हैं कि चेतनता पूर्ववत् बनी रहती है और मृत्यु के पश्चात् जब कि भौतिक शरीर पूर्ववत् विद्यमान रहता है चेतनशक्ति नष्ट होजाती है, इसलिये मानना पड़ता है कि शरीर के अतिरिक्त जीवात्मा कोई दूसरा द्रव्य और परमात्मा के समान अनादि है।

आत्मा का अनादित्व।

बहुत से मनुष्य जो आस्तिकदल में परिगणन किये जाते हैं ईश्वर के अतिरिक्त प्रकृति को अनादि नहीं समझते उन के विचार में यह जगत् ईश्वर से उत्पन्न होता है और अन्त में ईश्वर में ही विलीन हो जाता है; परन्तु ऐसा मानना भी अज्ञानता है, क्योंकि जब ईश्वर अनादि है तो उसके गुण, कर्म, स्वभाव भी अनादि हुए क्योंकि गुण; गुणी से पृथक् नहीं हो सक्ता। यदि कोई मनुष्य ईश्वर को सृष्टि का कर्त्ता मानता है और साथ ही उसे अनादि भी समझता है ऐसी दशा में यदि वह जगत् के उपादान कारण (प्रकृति) को अनादि नहीं मानता तो वह ईश्वर का अनादित्व कदापि सिद्ध नहीं कर सक्ता और ऐसे मनुष्यों का ईश्वर वास्तव में उस मनुष्य से अधिक अपनी स्थिति नहीं रक्खेगा जो किसी भूमि का अध्यक्ष नहीं है परन्तु राजा कहलाता है। वैशेषिक दर्शन में लिखा है कि:—

प्रकृति भी अनादि है।

कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः ॥ अ० २ आ० १ सू० २४

अर्थात् जो गुण किसी वस्तु के कारण में होते हैं वे उस के कार्य में अवश्य विद्यमान रहते हैं। इस नियम से भी यदि यह संसार ईश्वर से उत्पन्न हुआ होता तो कदापि जड़ न होता और इस में ईश्वर के से ही गुण, कर्म और स्वभाव होते यदि यह मानाजावे कि ईश्वर ने अभाव से भाव की दशा में परिणत कर दिया है तब भी

यह सिद्धान्त ठीक नहीं है क्योंकि भगवद्गीता में लिखा है:—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥

अर्थात् कभी असत् (जो नहीं है) का भाव (विद्यमानता) और सत् का अभाव नहीं होता इन दोनों का निर्णय तत्वदर्शी लोग जानते हैं न कि मूर्ख और दुराग्रही। अतएव स्पष्ट सिद्ध है कि न तो यह जगत् ईश्वर से ही उत्पन्न हुआ है न उसने अभाव से ही बनाया है वरन् प्रकृति से जो ईश्वर के समान ही अनादि है और प्रलय काल में परमात्मा में सूक्ष्मभाव से विद्यमान रहती है, बनया है। जो पुरुष प्रलय के पश्चात् प्रकृति का अभाव मानते हैं वे अज्ञानी हैं।

सृष्ट्युत्पत्ति एवं ईश्वर, जीव और प्रकृति के अनादित्व में वैदिक प्रमाणः—

बहुत से मनुष्यों का सिद्धान्त है कि यह सृष्टि जो हमें दृष्टिगत होती है हम इसके विषय में कुछ नहीं कह सकते हैं कि यह इससे पूर्व भी उत्पन्न हुई थी या नहीं। वास्तव में ऐसे मनुष्योंका कथन सत्य है और उन्हें वास्तव में ख़बर नहीं है क्योंकि जिन पुस्तकों को वे ईश्वरकृत मानते हैं वास्तव में वे ईश्वरीय ज्ञान के पुस्तक नहीं हैं और इसी लिये ऐसे पुस्तकों से हमें कुछ लौकिक वा पारलौकिक वृत्तान्त सत्य २ ज्ञात नहीं हो सकते। वेद भगवान् जो ईश्वरी ज्ञान का भण्डार हैं और जो सृष्टि के आरम्भ में उस परमदयालु परमात्मा की ओर से मनुष्यों को प्रदान किये गये हैं हमें बतलाते हैं कि:—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत ।

अर्थात् उस परमात्मा ने सूर्य, चन्द्र आदि लोकों को इसी प्रकार बनाया और धारण किया है जैसा कि पूर्वकल्पों में बनाया और धारण किया था। यदि सूक्ष्मदृष्टि से देखा जावे तो परब्रह्म परमात्मा ने उपर्युक्त वैदिक वाक्य के अन्तर्गत इतने विषय वर्णन कर दिये हैं कि जिनकी व्याख्या के लिये १०० पृष्ठ भी अलम् नहीं हैं। साधारणतया इस वैदिक वचन से हम यही अर्थ ग्रहण करते हैं कि इससे पूर्व भी सृष्टि असंख्यवार उत्पन्नहो चुकी है, जिस प्रकार रात्रि के पश्चात् दिन और दिन के पश्चात् रात्रि का चक्र सदा चलता रहता है और हम किसी को आदि वा अन्त नहीं कह सके इसी प्रकार प्रलय के

पश्चात् सृष्टि और सृष्टि के पश्चात् प्रलय का चक्र अनादि काल से चल रहा है जिसकी गणना करने का साहस करना इस अल्पज्ञ जीव की शक्ति से बाहर है। बहुत से मनुष्य वैदिकसिद्धान्त पर यह आक्षेप किया करते हैं कि वारंवार प्रलय और सृष्टि करने की ईश्वर को आवश्यकता ही क्या है? इसका उत्तर वैदिक सिद्धान्त इस उत्तमता से देते हैं कि अन्तःकरण उस से सन्तुष्ट हो जाता है। वह कहते हैं कि जो वस्तु कार्यरूप में परिणत होती है समय पाकर उसका नाश अवश्य होता है इसलिये यह सृष्टि जो अनन्त परमाणुओं का संघातरूप दृष्टिगोचर हो रही है समय पाकर इस का नाश (प्रलय) अवश्य होगा और प्रलय के पूर्व जो २ जीव जैसा कर्म करते हैं उन का फल देने के लिये ही प्रलय के पश्चात् परमात्मा सृष्टि को उत्पन्न करते हैं। वेदों में लिखा है किः—

द्वा सु॒प॒र्णा स॒युजा॒ सखा॑या समा॒नं वृ॒क्षं परि॑षस्वजाते।
तयो॑र॒न्यः पिप्प॑लं स्वा॒द्वत्त्यन॑श्नन्न॒न्यो अ॒भि चा॑कशीति॥

ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त १६४ मं० २०५॥

अर्थात् (द्वा) जीव और ब्रह्म (सुपर्णा) चेतनतादि गुणों में समान (सयुजा) व्याप्यव्यापकभाव में संयुक्त (सखाया) सदा से मित्र अर्थात् अनादि हैं (समानम्) वैसीही (वृक्षम्) प्रकृति भी है (तयो०) इन में से एक [जीव] फलों को (स्वाद्वत्ति) खाता है और दूसरा [ईश्वर] (अनश्नन्) न खाता हुआ (अभिचाकशीति) चहुं ओर प्रकाशित हो रहा है।

उपरोक्त मन्त्र में ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनों को अनादि वर्णन किया गया है अब एक मनुस्मृति का श्लोक नीचे उद्धृत किया जाता है जिस से विदित होगा कि प्रलयकाल में जगत् की क्या अवस्था होती है और प्रसुप्त होने के कारण जीव उस की दशा को अनुभव नहीं कर सक्ताः—

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः॥

अर्थात् यह जगत् सृष्टि के पहले प्रलय में अन्धकार से आच्छादित था उस समय यह प्रसुप्त (गाढ़निद्रा में) था एवं किसी के तर्क में लाने और जानने योग्य न था।

जिस समय सृष्टिरचन का समय आता है तब परमात्मा इन परमसूक्ष्मपरमाणुओं को इकट्ठा करते हैं जिस प्रकार यह, कारणमय जगत् क्रमशः स्थूल होता जाता है, सांख्यशास्त्र में उसके प्रत्येक रूपान्तर के पृथक् २ नाम लिखे हैं अर्थात् प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कार, पञ्चतन्मात्रा, पञ्चस्थूलभूत; उसके उत्तरोत्तर स्थूलरूपोंकी संज्ञा है जिनकी संख्या इन के अवान्तरभेदों के सहित उक्त दर्शन में २४ वर्णन की गई है और २५वें पुरुष को गिन कर इन सब को समस्त चराचर सृष्टि का मूल माना गया है। तैत्तिरीयोपनिषद् में लिखा है किः—

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूत । आकाशाद्वायुः । वायोराग्निः । अग्नेरापः । अद्भ्यः पृथिवी । पृथिव्या ओषधयः ओषधिभ्योऽन्नम् । अन्नाद्रेतः । रेतसः पुरुषः । सवा एष पुरुषोऽन्नरसमयः ॥

अर्थात् जब कारणरूप द्रव्य जो सर्वत्र फैला रहता है स्थूल होने लगता है तो आकाश (खाली जगह) की उत्पत्ति होती है; आकाश के पश्चात् वायु; वायु के अग्नि; अग्नि के जल और जल के पश्चात् पृथिवी उत्पन्न होती है; पृथिवीसे ओषधियें; ओषधियों से अन्न; अन्न से वीर्य्य और वीर्य्य से पुरुष (प्राणियों) की उत्पत्ति होती है।

भूगोल खगोल का संक्षिप्त वर्णन

सूर्य्य सिद्धान्त नामक ज्योतिष के अति प्राचीन ग्रन्थ में जिसे बने संवत् १९६४ विक्रमी में २१६५००८ वर्ष व्यतीत हुए लिखा है किः—

अग्निषोमौ भानुचन्द्रौ ततस्त्वङ्गारकादयः । तेजो भूखाम्बुवातभ्यः क्रमशः पञ्चजज्ञिरे ॥ १ ॥ पुनर्द्वादशधात्मनं विभजद्राशिसंज्ञकम् । नक्षत्ररूपिणं भूयः सप्तविंशात्मकं वशी ॥ २ ॥ ग्रहनक्षत्रताराणां भूमेर्विश्वस्य वा विभुः । देवासुरमनुष्याणां सिद्धानां च यथाक्रमम् ॥ ३ ॥ ब्रह्माण्ड मेतत्सुषिरं तत्रेदं भूर्भुवादिकम् । कटाहद्वितयस्येव सम्पुटं गोलकाकृति ॥ ४ ॥ ब्रह्माण्डमध्ये परिधिर्व्योमकक्षाभिधीयते । तन्मध्ये भ्रमणंभानामधोऽधः क्रमशस्तथाः ॥ ५ ॥ मन्दामरेज्यभूपुत्रसूर्यशुक्रेन्दुजन्दवः । परिभ्रमन्तधोऽप्यस्थाः सिद्धविद्याधराघनाः ॥ ६ ॥ मध्ये समन्तादण्डस्य भूगोलोव्योम्नि तिष्ठति । विभ्राणः परमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकाम् ॥७॥ तदन्तर पुटाः सप्त नागासुर समाश्रयाः । दिव्योषधिरसोपेता रम्या पातालभूमयः ॥८॥

सूर्य सिद्धान्त अध्याय १२ श्लो० २३।२४ तथा २८ से ३३ पर्य्यन्त ॥

अर्थ—उस परमात्मा ने अग्निरूप सूर्य्य, जलस्वरूप चन्द्रमा को

रच कर, पुनः तेज से मङ्गल, पृथिवी से बुध, आकाश से बृहस्पति, जल से शुक्र, और वायु से शनि इन पांच ग्रहों को उत्पन्न किया ॥ १ ॥ पुनः उस वशी (ब्रह्म) ने अपनी इच्छा से १२ विभागात्मक राशि चक्र और २७ नक्षत्रादिकों को रचा ॥ २ ॥ फिर ग्रह, नक्षत्र, तारा, पृथिवी, देव, असुर, मनुष्य, सिद्ध इनके स्थानों का विभाग किया ॥ ३ ॥ पूर्वोक्त ब्रह्माण्ड में भूभुर्वादि लोक* अवस्थित हैं, यह ब्रह्माण्ड गोल है जैसी कि दो कटाहों को मिलाने से आकृति बनती है ॥ ५ ॥ ब्रह्माण्ड के मध्य में परिधि को आकाशकक्षा कहते हैं जिस में सब से ऊपर राशि चक्र, उस के नीचे शनि, उस के नीचे बृहस्पति, उस के नीचे मङ्गल, उस के नीचे सूर्य्य, उस के नीचे शुक्र, उस के नीचे बुद्ध, और बुद्ध के नीचे चन्द्रमा भ्रमण करता है, उस के नीचे सिद्धविद्याधरगण के घूमने का मार्ग अन्तरिक्ष है और सब से नीचे मेघमण्डल है ॥ ५ ॥ ॥ ६ ॥ परमात्मा की धारणात्मिका परमांशक्ति के आधार यह भूगोल (पृथिवी) ब्रह्माण्ड के मध्य आकाश में घूम रहा है ॥ ७ ॥ भूगोल के भीतर नाग और असुर आदि के निवासार्थ ७ पाताल† हैं जिन में अनेक प्रकार की स्वप्रकाशयुक्त रमणीक ओषधि उत्पन्न होती हैं।

सिद्धान्त शिरोमणी नामक ज्योतिष के ग्रन्थ में जिसे संवत् १९६४ विक्रमी में बने १०२९ वर्ष बीते पृथ्वी के गोल तथा विना किसी मूर्त्तिमान् धर्त्ता के आधार स्थित होने एवं अपनी आकर्षण शक्ति से सब पदार्थों को अपनी ओर खींचने के विषय में अति प्रबल युक्तियें वर्णन कीगई हैं जिन में से कुछेक का उल्लेख हम यहां भी करते हैं।

समोयतः स्यात्परिधे शतांशः पृथ्वी च पृथ्वी नितरां तनीयान् ।
नरश्च तत्पृष्ठगतस्य कृत्स्ना समेवतस्य प्रतिभायतः सा ॥१॥
मूर्त्तो धर्त्ता चेद्धरित्र्यास्ततोऽन्यस् तस्याप्यन्योऽस्यैवमत्रानवस्था ।
अन्त्ये कल्प्या चेत्स्वशक्तिः किमाद्ये किं नो भूमेः साष्टमूर्त्तेश्च मूर्त्ति ॥२॥

* ७-लोक यह हैं १ भूर्लोक २ भुवर्लोक ३ स्वर्लोक ४ महर्लोक ५ जनलोक ६ तपलोक ७ सत्यलो[क]

† ७-पाताल-१ महातल २ (ऐशिया) २ रसातल (यूरोप) ३ अतल (ओशीनिया) ४ सुत[ल] (आफ्रिका) ५ वितल (आस्ट्रेलिया) ६ तलातल (दक्षिणी अमेरिका) ७ पाताल (उत्तरीय अमेरिका) इन्हीं ७ पातालों को संस्कृत में १-जम्बूद्वीप २ शाकद्वीप ३ कुशद्वीप ४ क्रौञ्चद्वीप ५ शाल्मलीद्वीप यक्षद्वीप और ७ पुष्करद्वीप भी कहते हैं ॥

आकृष्टिशक्तिश्च मही तया यत् खस्थं गुरु स्वाभिमुखं स्वशक्त्या ।
आकृष्यते तत्पततीव भाति समे समन्तात्क पतत्वियं खे ॥३॥

अर्थः—मनुष्य जो पृथ्वी के पृष्ठ पर रहता है भूमि की अपेक्षा बहुत छोटा होने के कारण पृथ्वी की परिधि के बहुत छोटे भाग को देख सक्ता है इसलिये उसे भूमि चपटी दिखाईदेती है परन्तु वास्तव में गोल है ॥ १ ॥ यदि पृथ्वी का कोई मूर्त्तिमान धर्त्ता [शेषनाग, बैल आदि] माना जाय तो उसका कोई और धर्त्ता मानना पड़ेगा और उसका कोई अन्य, इसी प्रकार कहीं अन्त न पावेगा और अंत में यही मानना पड़ेगा कि पृथ्वी अपनीही शक्ति से स्थित है ॥ २ ॥ पृथ्वी अपने ऊपर के सब पदार्थों को आकर्षण शक्ति से अपनी ओर खींचती है इसलिये सब पदार्थ पृथ्वीपर गिरते हैं और उसपर स्थित रहते हैं ॥

बौद्ध लोग जो भूमि को भारी होने के कारण नीचे को चली जाती है ऐसा मानते हैं उपरोक्त पुस्तकके प्रणेता इसका खण्डन इस प्रकार करते हैं :-

भूः खेऽधः खलु यातीति बुद्धिर्बौद्ध ! मुधाकथम् ।
जातायातं तु दृष्ट्वापि खे यत् क्षिप्तं गुरु क्षितम् ॥

यदि भूमि नीचे को जाती है तो ऊपर को फेंकी हुई गेंद फिर पृथ्वी पर न गिरनी चाहिये क्योंकि दोनों नीचे गिरती हैं यदि कोई कहे कि भूमि की गति मन्द है और गेंद की शीघ्र है तो यह असम्भव है क्योंकि भारी वस्तु शीघ्र गिरा करती है ॥

यह बात निश्चित है कि जैसे पृथ्वी के इस भाग में मनुष्यादि वसते हैं वैसेही पाताल में भी रहते हैं जैसा कि सि०शि०में लिखाहैः—

सर्वतः पर्वतारामग्रामचैत्यचयैश्चितः ।
कदम्बकुसुमग्रन्थिः केसरप्रकरैरिव ॥ *

पृथ्वी के सब ओर पर्वत, आराम (बाग़) और ग्रामादि हैं जैसे कदम्ब के फूल के चारों ओर पङ्खड़ियें होती हैं ॥

---

* यहां बहुत से मनुष्य शङ्का करते हैं कि पाताल निवासी नीचे कैसे वसते हैं और उलटे होने के कारण गिर क्यों नहीं पडते ? परन्तु नीचे ऊपर वस्तुतः नियत नहीं हैं जो पैरों की ओर है उसको नीचे, और जो शिर की ओर है उस को ऊपर कहते हैं जैसे पातालदेश निवासियों के पैरों की ओर हम रहते हैं और हम ऊपर को नहीं उड़जाते इसी प्रकार वे भी हमारे नीचे रहते हैं और भूमि के आकर्षण से कहीं को नहीं गिर सक्ते ।

पृथ्वी की परिधि और व्यास के मान विषय में उपरोक्त ग्रन्थ में लिखा है किः—

प्रोक्तो योजनसंख्या कुपरिधिः सप्ताङ्गनन्दाब्धयः ।
तद्व्यासः कुभुजङ्ग सायक भुवः सिद्धांशकेनाधिकाः ॥
याम्योदक्पुरयोः पलान्तरहृतं भूवेष्टनं भांशहृत् ।
तद्भक्तस्य पुरान्तराध्वन इह ज्ञेयं समं योजनम् ॥१॥

पृथवीकी परिधि ४९६७ योजन और व्यास १५८१* योजन लम्बा है दो ऐसे नगरों के जिन में एक भूमध्यरेखा के उत्तर और दूसरा दक्षिण में स्थित दो पलान्तर को भूमि की परिधि में गुणन करने और ३६० पर भाग देने से उन नगरों का योजनों में अन्तर जाना जाता है।

वेदों को ईश्वरने रचाहै और वे ही सब विद्याओं का भण्डार हैं ॥

डार्विन प्रभृति यूरोप के अनेक विद्वानों ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि ज्ञान और भाषा ईश्वरप्रदत्त नहीं है प्रत्युत मनुष्यों ने ही इन्हें बनाया है, परन्तु युक्ति और प्रमाण शून्य होने से उन का यह कथन कदापि माननीय नहीं हो सकता। यदि किसी शिशु को उत्पन्न होते ही किसी ऐसे स्थान में रक्ख कर उसका पालन किया जावे जहां वह किसी प्रकार का शब्द न सुन सके तो वह किसी भाषा का ज्ञाता नहीं हो सकता और न किसी विद्या का ही आविष्कार कर सकता है। भेड़ियों की मांदों से पकड़े हुए बालक इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं कि वे न तो भाषाज्ञ ही होते हैं न किसी विद्याको ही प्रकाशित कर सकते हैं। अतएव सिद्ध है कि मनुष्योंको उत्पन्न करते ही उस परमपिता परमात्मा ने अपना ज्ञान भी प्रदान किया था जिसके द्वारा मनुष्य अपने भाव एक दूसरे पर प्रकट कर सकें और सृष्टि की समस्त वस्तुओं के गुणावगुणों का अनुभव कर के उस को धन्यवाद देते हुए अपने जीवन को सुख और शान्ति पूर्वक बितावें। जिस समय हम संस्कृत साहित्य का अवलोकन करते हैं तो कोई पुस्तक ऐसी नहीं पाते जो वेदों की महिमा और उनके अपौ-

* यदि एक योजन ५ मील के बराबर माना जाय तो पृथ्वी की परिधि ४९६७ × ५=२४८३५ मील और व्यास १५८१ × ५=७९०५ मील होता है योरुपदेशवासियों ने भूमि की परिधि २४८५६ मील और व्यास ७९१२ मील निश्चित किया है; यह थोड़ा अन्तर भी इस कारण है कि एक योजन ५ मील से कुछ अधिक का होता है।

रुषेयत्व का वर्णन न कर रही हो और यह न बतला रही हो कि सृष्टि के आरम्भमें परमात्मा ने यही ज्ञान मनुष्यों को दिया था। महर्षि जैमिनि, कणाद, गोतम, पतञ्जलि, व्यास और कपिल प्रभृति तत्व-वेत्ता और कर्कश तर्क वाले अपने उन छओं शास्त्रों में जिन्हें देखकर यूरोप के बड़े २ फिलाफ़र्स(विद्वान्)विस्मित हैं एक स्वर से वेदों को नित्य और स्वतः प्रमाण मान रहे हैं और जहां पर उन के सिद्धान्त में वेदों से विरोध आया है मौन धारण करके वहां उन्होंने वेदों का ही प्रमाण स्वीकार किया है 'शास्त्र योनित्वात्' इस वेदान्त दर्शन के सूत्र का अर्थ करते हुए स्वा० शङ्कराचार्य जी ने भी वेदों को नित्य मान के यह व्याख्यान किया है कि ऋगादि चारों वेद अनेक विद्याओं से युक्त और सूर्य्य के समान सब विद्याओं का प्रकाश करने वाले हैं और वे परमात्मा से प्रकाशित हैं।

मनुस्मृति में भी जिसे बने बारह करोड़ वर्ष से अधिक बीते लिखा है किः-

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते। धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ॥१॥ श्रुति द्वैधं तु यत्र स्यात्तत्र धर्मावुभौ स्मृतौ। उभावपि हि तौ धर्मौ सम्यगुक्तौ मनीषिभिः ॥२॥ मनु० २। १३—१४॥

अर्थात् धर्म और काम पाने की इच्छा रहित मनुष्यों को यह उपदेश है कि जो धर्म को जानना चाहते हैं उनके लिये श्रुति ही सब से अधिक प्रमाण के योग्य है। जहां श्रुति और स्मृति में विरोध हो वहां श्रुति का वचन प्रामाण्य है स्मृति का नहीं यदि कहीं श्रुतियों में दो प्रकार के धर्मों का प्रतिपादन किया गया हो तो वहां दोनों काही प्रमाण करना चाहिये॥

कहां तक प्रमाण लिखें ब्राह्मण ग्रन्थ, दर्शन और पुराणादि आ-धुनिक ग्रन्थ जिनका आर्यों से पूर्णतया अथवा किञ्चित् सम्बन्ध है। वेदों के महत्त्व और अपौरुषेयत्व को स्वीकार कर रहे हैं अतएव आ-र्यावर्त्त निवासी ऋषि मुनियों ने इसी ईश्वरीय ज्ञान अर्थात् चारों वेदों से, अनेक विद्याओं का विकाश करके भूमण्डल भर में फैलाया था जैसा कि मनुस्मृति के निम्न श्लोक से विदित होता हैः—

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्र जन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवः ॥मनु० २ । २० ॥

अर्थात् इस देश में उत्पन्न हुए ब्राह्मणों से भूमण्डल भर के सब मनुष्यों ने आकर अनेक प्रकार की शिक्षायें ग्रहण कीं ।

बहुत से लोग वेदों को ईश्वरवाक्य नहीं मानते और कहते हैं कि इन्हें ब्रह्मा जी ने अपने चार मुखों द्वारा उत्पन्न किया है परन्तु सच्छास्त्रों में इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता । महर्षि याज्ञवल्क्य अपनी पण्डिता स्त्री मैत्रेयी को उपदेश करते हैं किः–

एवं वा अरेस्य महतो भूतस्य निःश्वसितः मेतधदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः ॥१॥ शतपथ काण्ड १४ अध्याय ५ ब्रा० ४ कं० १० ॥

अर्थात् हे मैत्रेयि ! जो आकाशादि से भी बड़ा परमेश्वर है इससे ही ऋगादि चारों वेद उत्पन्न हुए हैं । जैसे मनुष्य के शरीर से श्वास बाहर आकर फिर भीतर को जाती है इसी प्रकार सृष्टि के आदि में ईश्वर वेदों को उत्पन्न करके संसार में प्रकाशित करता है और प्रलय होने पर संसार में वेद नहीं रहते परन्तु उस के ज्ञान के भीतर सदा विद्यमान रहते हैं । मनुस्मृति में भी लिखा है किः–

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ।
दुदोह यज्ञसिद्धयर्थमृग्यजुः साम लक्षणम् ॥ १ । २३ ॥

अर्थात् ब्रह्मा जी ने यज्ञ की सिद्धि के लिये अग्नि, वायु, आदित्यादि ऋषियों से वेदों को ग्रहण किया । उपर्युक्त शतपथ तथा मनुस्मृति के प्रमाणों से विदित है कि सृष्टि के आदि में परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा ४ ऋषियों के अन्तरात्मा में उनके पूर्व कल्पके पुण्यफलों के कारण ऋग्यजु, साम और अथर्व, वेदोंका प्रकाश किया था और उपर्युक्त चारों ऋषियों से वेदोंका ज्ञान प्राप्त करके ब्रह्माजी ने सृष्टि के आदि में अनेक मनुष्यों को शिक्षा दी न कि ब्रह्मा जी ने वेद स्वतः बनाये ।

यूरोप के विद्वान् वेदों को ईश्वरकृत नहीं मानते और उनके मनुष्यकृत होने में यह दो प्रमाण देते हैं कि यदि वेद परमेश्वर का ज्ञान होता तो ४ पुस्तकों में विभक्त कदापि न होता प्रत्युत एक पुस्तक में ही यह समस्त ज्ञान वर्णन किया जाता । इसलिये यह चारों पुस्तक भिन्न २ समयों में निर्माण की गई हैं और

बहुत समय के पश्चात् मनुष्य इन्हें एक ही समय में निर्मित और परब्रह्म परमात्मा से प्रकाशित मानने लगे हैं। बहुत से मनुष्य इस युक्ति की पुष्टि में मनुस्मृति का उपर्युक्त श्लोक भी पेश किया करते हैं और कहते हैं कि इसमें तीन ही वेदों का वर्णन है चौथे अथर्व-वेद का नहीं है इसलिये अथर्ववेद मनुस्मृति के भी पश्चात् बनाया गया है, परन्तु ऐसे आक्षेप प्रायः उन्हीं लोगों की ओर से होते हैं जिन्हें आर्षग्रन्थों से पूर्ण अभिज्ञता नहीं है। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि:—

स ऐक्षत प्रजापतिः त्रय्यां वावविद्यायां सर्वाणि भूतानि।
हन्त त्रयीमेव विद्यामात्मामनभिसंस्करवै॥१०।४।२।२१।तथा २२॥

अर्थात् उस प्रजापति (परमेश्वर) ने सब सृष्टि को देखा और कहा कि सब पदार्थ " त्रयी-विद्या " के अन्तर्गत हैं, मैं त्रयीविद्या से ही मन और जीवात्मा का संस्कार करूं।

उपर्युक्त शतपथ वाक्यसे विदित है कि वेदोंका नाम त्रयी-विद्या है और उनका यह नाम इसलिये है कि उनमें तीन विद्याओं अर्थात् (१) ज्ञान (२) कर्म और (३) उपासना का वर्णन है। जिन मन्त्रों में सृष्टि के समस्त पदार्थों के गुण वर्णन किये गये हैं उन के समुदाय का नाम ऋग्वेद है। जिन मन्त्रों में पदार्थों के गुणों से कार्य की सिद्धि बताई गई है उन के संग्रह को यजुर्वेद कहते हैं। जिन मंत्रों में ईश्वर के उपासनाकाण्ड का उपदेश है उन के समुदाय को सामवेद कहते हैं। और जिन मंत्रों में विज्ञान अर्थात् ज्ञान, कर्म और उपासनासे यथावत् उपयोग लेकर अनेक कार्यों की सिद्धि बत-लाई गई है उनके संग्रह को अथर्ववेद* कहते हैं वास्तव में अथर्ववेद किसी विद्याका प्रतिपादन नहीं करता प्रत्युत उपर्युक्त त्रयीविद्याओं की सिद्धि बतलाता और रक्षा करता है इसलिये यह त्रयीविद्या के ही अन्तर्गत माना गया है। शास्त्रों में अनेक स्थलों पर त्रयीविद्या

---

* अथर्ववेद में प्रागुक्त तीनों वेदों में कथित विद्याओं की सिद्धि बतलाई गई है और वह दो प्रकार की है (१) सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ के गुणों का ज्ञान प्राप्त करके उनसे अनेक प्रकार की विद्याओं अर्थात् रेल, तार आकाशयान, अस्त्र-शस्त्रादिकों का निर्माण करना (२) परमेश्वर का यथावत् ज्ञान और उसको प्राप्त होना। उपर्युक्त दोनों प्रकार की विद्याओं में ईश्वर की आज्ञानु-कूल चलने और उसे प्राप्त होने की विद्या को ही प्रधान माना गया है।

के वर्णन में चारोंवेदों का ग्रहण किया जाता रहा है जैसा कि महाभारत के निम्न श्लोक से विदित होगाः—

त्रयीविद्यामवेक्षेत वेदेसूक्तामथाङ्गतः ।
ऋक्सामवर्णाक्षरता यजुषोऽथर्वणस्तथा ॥ शान्ति पर्व १३५ ॥

अर्थात् ऋग्, यजु, साम और अथर्व इन चार वेदों में कही हुई त्रयीविद्याओं को साङ्गोपाङ्ग पढ़े ।

सम्प्रति योरोपदेशीय विद्वानों ने जो अनेक रैल, तार, व्योमयान प्रभृति विद्याओं का आविष्कार किया है और अनेक नवीन सिद्धान्त ज्ञात कियेहैं, या प्रकाशित कर रहे हैं उनके विषयमें हमारे बहुत से भोले भाई यह समझते हैं कि यह सिद्धान्त इन्होंने अपने बुद्धिवैभव से नवीन ही ज्ञात किये हैं, प्राचीन लोगों को इनका कुछ परिज्ञान न था परन्तु यह उनका केवल भ्रम है, हम पीछे सिद्ध कर चुके हैं कि मनुष्य में किसी विद्या को आविष्कार करने की शक्ति नहीं है, वही वैदिक सिद्धान्त जो प्राचीन ऋषि औरमुनियों ने वेदों से निकाल कर भूमण्डलभर में फैलाये थे किसी न किसी वेश में पृथिवी के अनेक भागोंमें विद्यमान हैं और उन्हीं को सिद्ध करनेके लिये केवल युक्ति औरप्रमाण एकत्रित करलिये जाते हैं अन्यथा किसी नवीन सिद्धान्त का आविष्कार मनुष्योंने न कभी किया और न कर सकेंगे। यदि चौदहवीं शताब्दि के अन्त "कोलम्बस" (colombus) ने भूमिके गोल होने और पन्द्रहवीं शताब्दि के अन्त में "कौपरनीकस" (Copernicus) नामी महात्मा ने पृथ्वी के घूमने और गोलाकार होने का सिद्धान्त लोगों को बताया और सोलहवीं शताब्दि के आरम्भ में जर्मनी के "केपलर" (Kepler) और इटली के "गेलीलियो" (Galileo) * ने इसी सिद्धान्त की अनेक प्रमाण देकर पुष्टि की तो यह विचार करना सत्य नहीं है कि इन महापुरुषों के पूर्व पृथ्वी के गोलाकार होने और भ्रमण करनेका सिद्धान्त संसारमें उपस्थित नहीं था। यूनानके प्रसिद्ध हकीम

* महात्मा गेलीलियो ने जब भूमि के गोलाकार होने और घूमने का सिद्धान्त प्रकाशित किया तो पादरी लोगों ने उस का बड़ा भारी विरोध किया यहां तक उस के प्राणों के ग्राहक बन गये थे क्योंकि बायबिलमें भूमि का चपटी होना लिखा है। परन्तु वेही पादरी लोग आज कल अपने मिशनस्कूलों में पृथ्वी के गोल होने की शिक्षा देकर अपने पुरुषाओं की मूर्खता और बाइबिल के असत्य लेख का स्वयमेव खण्डन कर रहे हैं।

"पैथेगोरस" (Pythagoras) ने यूरोप देशोंको इससे बहुत पहले यह सिद्धान्त बतलाया था परन्तु पीछे स्कन्दरियाके 'टालमी' (Ptolemy) नामक ज्योतिषी ने अविद्या के कारण हकीम पैथेगोरस के सिद्धान्त का खण्डन कर के लोगों को पृथ्वी के स्थिर और चपटी होने की शिक्षा दी और इसी कारण बहुत काल तक इस सिद्धान्त को मानने से "कौपरनीकस" (Copernicus) के सिद्धान्त को लोगों ने नवीन समझा। परन्तु आर्यावर्त्त निवासी इस सिद्धान्त को अनादि काल से जानते चले आये हैं जैसा कि हम भूगोल और खगोल के विषय में वर्णन करते समय इसका उल्लेख कर चुके हैं।

यदि "जेम्सवाट" ने पकती हुई खिचड़ीके ऊपर खड़कते हुए ढकनेका कारण वाष्प (भाप) की शक्तिको अनुभव किया तो भापके गुण जानने पर भी वह स्टीम एञ्जिन तब तक नहीं बनासका जब तक कि उसे "न्यूकोमन" के बनाये हुए एञ्जिन की मरम्मत करने का अवसर न मिला।

यदि सूर्य्यकी किरणें ७ प्रकारके रंगों*से बनी होनेका सिद्धान्त १६वीं शताब्दिमें 'न्यूटन' (Newton) साहबने निकाला तो यह मानलेना मूर्खता है कि १६वीं शताब्दि से पहले यह सिद्धान्त संसार में उपस्थित नहीं नहीं था इस समय हम यह नहीं बतला सक्ते कि न्यूटन साहब ने यह सिद्धान्त कहां से लिया परन्तु इस विषय में आर्यावर्त्तीय विद्वानों की बनाई पुस्तकों के प्रमाण देकर हम सिद्ध करेंगे कि अनादिकाल से आर्य लोग इस सिद्धान्त को जानते थे और उन्हें न्यूटन साहब से भी १६०० वर्ष पूर्व तक यह सिद्धान्त ज्ञात था। वृहत् संहिता जिसे वराहमिहिर ने, महाराज विक्रमादित्य के समय में बनाया है उस के अध्याय ३४ में लिखा है कि:—

संमूर्च्छिता रवेन्द्वो किरणाः पवनेन मण्डलीभूतः।
नानावर्णा कृतयन्तैन्यभ्रे व्योम्नि परिवेषः॥

अर्थात् सूर्य और चन्द्रमा की किरणें बादल में पवन के जलकणों से पृथक् २ हो मण्डलाकार और नानावर्ण की (रंगबिरंगी) हो कर आकाश में दिखाई देती हैं।

---

* सूर्य किरणें (१) लाल (२) नारङ्गी (३) पीली (४) हरी (५) आस्मानी (६) नीली और (७) बैंजनी सात प्रकार के रङ्गों से बनी हैं, इन का प्रत्यक्ष हम एक तिकोने कांच के शीशे में देखने से कर सक्ते हैं, सूर्यरश्मि उस कांच में फट कर ७ प्रकार की दृष्टि आने लगती हैं। आकाश में जो इन्द्रधनुष दृष्टि पड़ता है उस का कारण भी यही है अर्थात् सूर्य की किरणें जब कांचरूपी जलबिन्दुओं में होकर निकलती हैं तो उनके ७ रङ्ग पृथक् २ हो जाते हैं।

फिर ३५ वें अध्याय में लिखा है किः—

सूर्यस्य विविधवर्णाः पवनेन विजादिताः कराः साभ्रे।
विपति धनुः संस्थाना ये दृश्यन्ते तदिन्द्र धनुः॥

अर्थात् सूर्य की विविध रंग वाली किरणें बादल वाले आकाश में पवन के जलकणों से फटकर जब धनुष रूप से दिखाई देती हैं तब उसको इन्द्रधनुष कहते हैं।

आर्यों ने इस सिद्धान्त को भी अन्य विद्याओं की तरह वेदोंसे प्राप्त किया था वेदोंमें इस विषयके "अमी ये सप्तरश्मयः" "सप्त-त्वा हरितो रथे" "अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः" आदि बहुत मन्त्र पाये जाते हैं।

अब हम कुछ ऐसे वेद मन्त्र उद्धृत करते हैं जो इस पुस्तक से विशेष सम्बन्ध रखते हैं।

त्रयः पवयो मधुवाहने रथे सोमस्य वेनामनु विश्व इद्विदुः। त्रयः स्कम्भासः स्कभितास आरभे त्रिर्नक्तं या थस्त्रिर्वश्विना दिवा॥ ऋ० १।३।४।१॥

अर्थः—यान इस प्रकार का बनाना चाहिये कि जिस में ३ पहिये हों जिन से वह जल और पृथिवी के ऊपर चलाया जासके, उस के सब अङ्ग वज्र के समान दृढ़ हों, उन में तीन २ खम्भे ऐसे बनाने चाहियें जिन के आधार सब कलायन्त्र लगे रहें तथा वे खम्भे भी दूसरे काष्ठ वा लोहेके साथ लगे रहें। सब शिल्पी लोग ऐसे यानोंको बनावें जिन से सुख की सिद्धि होती है और उन यानों से जिन के आरम्भ में अग्नि और जल ही मुख्य हैं तीन दिन और तीन रात्रि में चाहे जहां जा सक्ते हैं।

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत। तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शङ्कवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः॥ ऋ० २।३।२३।४८॥

अर्थः—इन यानों में बारह खम्भे रचने चाहियें जिन में सब कलायन्त्र लगाये जायं। उन में एक चक्र बनाना चाहिये जिस से सब घूमें। फिर उस के मध्य में तीन चक्र रचने चाहियें जिन में एक के चलाने

से सब रुक जायं दूसरे के चलाने से आगे और तीसरे के चलाने से पीछे चलें। उन में तीन २ सौ बड़े शङ्कवः (पेंच) लगाने चाहियें जिन से उन के सब अङ्ग जुड़जायं। उन में ६० कलायन्त्र ऐसे रचने चाहियें जिन में कुछ चलते रहें और कुछ बन्द रहें। अर्थात् जब विमान ऊपर को उठाना हो तो वाष्पघर के ऊपर के मुख बन्द रखने चाहियें और जब नीचे उतारना हो तो वे खोल देना चाहियें इसी प्रकार पूर्व पश्चिमादि जिस दिशा को चलाना हो उस ओर के मुख अनुमान से बन्द कर देना उचित है।

अरित्रं वां दिवस्पृथु तीर्थे सिन्धूनां रथः। धिया युयुज्र इन्दवः॥ ऋ०॥ १। ३। ३४। ८॥

अर्थः—जो पूर्वोक्त अरित्रयुक्त यान चलते हैं वे रथ बड़े २ समुद्रों को भी पार कर जाते हैं उन तीन प्रकार के (जल, स्थल और आकाश में गमन करने वाले) यानों में वाष्प वेग के लिये एक जलाशय बनाकर जलसिंचन करना चाहिये।

अबुध्ने राजा वरुणो वनस्योर्ध्वं स्तूपं ददते पूतदक्षः॥ नीचीनाः स्थुरुपरि बुध्न एषामस्मे अन्तर्निहिताः केतवः स्युः॥ ऋ० १। ६। २४। ७॥

अर्थः-हे मनुष्यो! तुम जो (पूतदक्षः) पवित्र बल वाला (राजा) प्रकाशमान् (वरुणः*) जल का समूह अर्थात् सूर्य (अबुध्ने) आकाश में (वनस्य) जो संसार है (ऊर्ध्वम्) उस पर (स्तूपम्) अपनी किरणें (ददते) छोड़ता है जिसकी (नीचीनाः) नीचे गिरती हुई (केतवः) किरणें (एषाम्) इस संसारके पदार्थोंके (उपरि) ऊपर (स्थुर) ठहरती हैं (अन्तर्हिताः) जो उसके मध्य में वायु, जल, और अनल तथा (बुध्नः) मेघादि पदार्थ (स्युः) हैं और (केतवः) प्रकाश का ज्ञान (अस्मे) हमें (निहितः) कराते हैं उन्हें यथावत् जानो।

इस मंत्र में बतलाया गया है कि यदि जल आदि के अति सूक्ष्म बिन्दुओं से यह अन्तरिक्ष आच्छादित न हो तो सूर्य इसे प्रकाशित

* सूर्य की किरणें निरन्तर जल को ऊपर लेजाती हैं इसलिये यहां वरुण शब्द सूर्य के अर्थ में ग्रहण किया है।

नहीं कर सकता क्योंकि प्रकाश जब तक किसी भौतिक पदार्थ के ऊपर नहीं पड़ता तब तक उसको हम लोग नहीं देख सकते। आकाश में जल, वायु, और अग्नि सर्वत्र भरी हुई है अतएव उस का ज्ञान कराकर ईश्वर ने वारुणाग्नेय और वायव्यादि अस्त्र बनाने की इस मंत्र में शिक्षा दी है।

संसारमें जितने पदार्थ पाये जाते हैं उनमें बहुतसी सूक्ष्म शक्तियां ऐसी विद्यमान रहती हैं कि जब तक रासायिनिक प्रयोग द्वारा ऐसे अन्य पदार्थों के साथ उस का सम्मेलन न किया जावे जिन में कि वही शक्ति विद्यमान है, उसका प्रत्यक्ष नहीं होता। 'मैनशिल' और 'पोटाश' दोनों में अग्नि सूक्ष्मतया वर्त्तमान हैं परन्तु विना दोनों को मिलाये उन का प्रत्यक्ष नहीं होता। जबकि रासायनिक प्रयोग द्वारा दोनों को मिलाया जाता है तब वही शक्ति प्रबल हो जाती है और किञ्चित् संघर्ष से आकाश में घोर शब्द उत्पन्न कर देती है। सम्प्रति यूरोप के देशों में बम्ब के गोले इसी नियम को लक्ष्य में रखकर बनाये जाते हैं और उस में अग्निचूर्ण (डाइनामाइट बारूद) आदिके साथ ऐसे ही पदार्थ रखे जाते हैं जो किञ्चित् संघर्ष से ही अग्नि उत्पन्न कर देते हैं और वह अग्नि बारूद को प्रज्वलित कर के सैकड़ों प्राणियों का संहार कर देती है। प्राचीन आर्य्य लोग अन्तरिक्ष में फैले अग्नि, जल और वायु के परमाणुओं को अनेक पदार्थों के रासायनिकप्रयोग से प्रबल कर के शत्रु सेना पर अग्निकी वृष्टि करते थे, एवं अग्नि वृष्टि से रक्षा करने के लिये जल बर्षाते थे और वायु वेग से बड़े २ बली शत्रुओं के सुदृढ़ शरीरावयवों को इस प्रकार दूर से ही तोड़ देते थे जिस प्रकार वायु अति विशाल वृक्षों को तोड़कर क्षणमात्र में भूमिपर गिरा देती है।

हमारे पौराणिक भाइयों का विश्वास है कि अस्त्र केवल मन्त्रों से चलते हैं परन्तु यह सत्य नहीं है क्योंकि महर्षि विश्वामित्र प्रणीत धनुर्वेद के प्रथम पाद में लिखा है किः—

तत्र धनुः शब्दश्चापे रूढोऽपि चतुर्विधायुधवाची वर्त्तते। तच्चतुर्विधम्; मुक्तम्, अमुक्तम्, मुक्तामुक्तम्, यन्त्रमुक्तञ्च। तत्र मुक्तं;। चक्रादि अमुक्तं; खड्गादि। मुक्तामुक्तं; शल्यावान्तरभेदादि। यन्त्रमुक्तं शरादि। तत्र मुक्तं अस्त्रमित्युच्यते, अमुक्तं शस्त्रमित्युच्यते।

अर्थात् धनुः शब्द चाप के अर्थ में रूढ़ि है और चार प्रकार के

आयुधों (हथियारों) का वाची है । वे चार प्रकार के ये हैं अर्थात् मुक्त, अमुक्त, मुक्तामुक्त और यन्त्रमुक्त । उन में से चक्रादि मुक्त, खड्गादि अमुक्त, शल्य के आवान्तरभेद मुक्तामुक्त और शरादि यन्त्रमुक्त कहलाते हैं । सारांश यह है कि मुक्त आयुध अस्त्र और अमुक्त शस्त्र कहलाते हैं ।

उपर्युक्त प्रमाण से प्रकट है कि यन्त्र से मुक्त होकर दूर से से ही शत्रुओं को विध्वंस करने की शक्ति का नाम अस्त्र और साधारण आयुधों (हथियारों) को शस्त्र कहते हैं । शस्त्रों से अस्त्रों की शक्ति वास्तव में बड़ीही प्रबल होती है । प्रायः इस समय भी देखने में आता है कि जिन सुदृढ़ प्राकारों (किलों) के तोड़ने में अस्त्रधारी सहस्त्रों योद्धा अशक्त होजाते हैं वहां थोड़ी सी 'डायनामाइट बारूद' उस की भित्तियों को जड़ से उखाड़ कर घोरशब्द करती हुईआकाशमें उड़ा लेजाती है । प्राचीन आर्य्यों के द्वारा ५०० अस्त्र और ५०० शस्त्रोंका निर्माण होना उनके पदार्थविद्या में पूर्ण-उन्नत होने का भारी प्रमाण है।

वेदों में ऐसे पदार्थों का अनेक स्थानों में वर्णन आया है जिन से अग्नि आदि तत्त्व प्रबल होजाते हैं, इन के अतिरिक्त और भी अनेक विद्यायें भरी पड़ी हैं जो पूर्णतया उन्हें विचारने से ही विदित होती हैं ज्यों २ संसार में वेदों के पठन पाठन का उत्साह मनुष्यों में उत्पन्न होगा वैसे ही वे अनेक विद्याओं को प्राचीन काल की भांति संसार में प्रकाशित करेंगे ।

परमपिता परमात्मा वेद में उपदेश करते हैं किः—

सृष्टिघुत्पत्ति और स्थिति के काल का निर्णय

शतं तेऽयुतं हायनान्द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः ॥
अथर्व काण्ड ८ अनु० १ मन्त्र २१

अर्थात् हे मनुष्यो ! सृष्टि की स्थिति का हिसाब समझने के लिये इस प्रकार जानो कि वे वर्ष दश हज़ार सैकड़ा अर्थात् दश लाख तक शून्य देने और तत्पश्चात् २, ३, ४ यथाक्रम लगाने से प्राप्त होते हैं । अतएव इस से स्पष्ट है कि सृष्टि ४३२०००००० चार अरब बत्तीसकरोड़ *

---

* इकाई, दहाई आदि की आर्य्य-शास्त्रों में इस प्रकार गणना लिखी है "एकं दश शतञ्चैव सहस्रमयुतं तथा । लक्षञ्च नियुतञ्चैव कोटिरर्बुदमेव च ॥ १ ॥ वृन्दः खर्वो निखर्वश्च सङ्खः पद्मञ्च सागरः । अन्त्यं मध्यं परार्द्धञ्च दशवृद्धया यथाक्रमम् ॥ २ ॥

अर्थात्–एक, दश, शत, सहस्र, अयुत, लक्ष, नियुत, कोटि, अर्बुद, वृन्द, खर्व, निखर्व, संख, पद्म, सागर, अन्त्य, मध्य और परार्द्ध इन में यथाक्रम दश २ गुणा बढ़ा कर गणना करनी चाहिये

वर्ष तक स्थिति रहती है। सृष्टि की उत्पत्ति से अद्य पर्य्यन्त (संवत् १९६४ विक्रमी तक) १९७२९४९००८ एक अरब, सत्तानवे करोड़, उन्तीस लाख, उनन्चास हज़ार, आठ, वर्ष, बीते। सृष्टि-उत्पत्ति से आजतक आर्य्य विद्वान् बराबर एक २ वर्ष बढ़ाते चले आरहे हैं और काशी, काश्मीर आदि नगरों में जो पञ्चाङ्ग अच्छे ज्योतिषियों के हाथों से निकलते हैं उन में यह अङ्क बराबर दिये जाते हैं अब इस उपर्युक्त सृष्टि काल की पुष्टि में आर्य्यशास्त्रों के प्रमाण उद्धार करते हैं:—

सूर्य्यसिद्धान्त मध्याधिकार के पूर्वखण्ड में लिखा है कि—

ऐन्दवस्तिथिभिस्तद्वत्संक्रान्त्या सौर उच्यते। मासैर्द्वादशभिर्वर्षं दिव्यं तदहरुच्यते ॥ १ ॥ सुरासुराणामन्योऽन्यमहोरात्रं विपर्ययात्। तत्षष्टिः षड्गुणा दिव्यं वर्षमासुरमेव च ॥ २ ॥ तद्द्वादशसहस्राणि चतुर्युगमुदाहृतम्। सूर्याब्दसंख्यया द्वित्रि सागरैरयुताहतैः ॥ ३ ॥ सन्ध्या सन्ध्यांश सहितं विज्ञेयं तच्चतुर्युगम्। कृतादीनां व्यवस्थेयं धर्मपादव्यवस्थया ॥ ४ ॥ युगस्य दशमो भागश्च तुस्त्रिद्वयेकपङ्गुणः। क्रमात्कृतयुगादीनां षष्ठांशः सन्ध्योः स्वकः ॥ ५ ॥ युगानां सप्ततिः सैका मन्वन्तरमिहोच्यते। कृताब्द संख्या तस्यान्ते सन्धिः प्रोक्तो जलप्लवः ॥६॥ ससन्धयस्ते मनवः कल्पे ज्ञेयाश्चतुर्दश। कृत प्रमाणः कल्पादौ सन्धिः पञ्चदशः स्मृतः ॥ ७ ॥ इत्थं युग सहस्रेण भूतसंहारकारकः। कल्पो ब्राह्म मह प्रोक्तं शर्वरी तस्य तावती ॥ ८ ॥

अर्थः—३० तिथियों का एक चान्द्रमास* होता है और एक संक्रान्ति से दूसरी संक्रान्ति तक का एक सौर मास होता है। और चान्द्र वा सौर, बारह मास का एक चान्द्र वा सौर वर्ष होता है जो देवताओंका एक अहोरात्र (रात, दिन) कहलाता है ॥१॥ देव और असुरों+ का दिन रात्रि विपर्यय से होता है। ऐसे ३० दिव्य अहोरात्र

*१—चन्द्रमा प्रतिदिन पश्चिम से पूर्व की ओर राशिचक्र में १३ अंश १० कला ५९ विकला जाता है और सूर्य ५९ कला और ८ विकला चलता है अतः चन्द्रमा प्रतिदिन सूर्य से १२। ११।... आगे जाता है चन्द्रमा की इस दैनिक गति से एक २ तिथि बनती है, चन्द्रमा जब सूर्य के ठीक सम्मुख अर्थात् १८० अंश पर होता है तो पूर्णमासी होती है और जब एक स्थान में आजाता है अमावस्या होती है। चन्द्रमा अपने ३६० अंश २९ दिन ३१ घड़ी और ५० पल में पूर्ण करता है वही अमान्त चान्द्रमास कहलाता है। भारतवर्ष में अमान्त चन्द्रमास का प्रचार है इसीलिये सौर मास से इसे मिलाने में तिथियों का ह्रास और वृद्धि होती है।

+ -उत्तरीय मेरु (ध्रुव) के निवासी देव और दक्षिणी ध्रुव के निवासी पूर्व कालमें असुर कहलाते थे चूंकि भूमि के घूमने के कारण सूर्य के उत्तरायण और दक्षिणायन होनेसे एक स्थान, ६ मा

का एक दिव्य मास, और १२ दिव्य महीनोंका एक वर्ष होता है॥२॥ पूर्वोक्त १२००० दिव्य वर्षों की एक चतुर्युगी होती है जिसके सौर वर्ष ४३२०००० होते हैं ॥ ३ ॥ उक्त चतुर्युगी का परिमाण सन्ध्या और सन्ध्यांश मिलाकर है और उसमें सत्युगादि क्रम से धर्मपाद अर्थात् ४,३,२ और १ की तरह हैं॥ ४ ॥ पूर्वोक्त महायुग वा चतुर्युगीके दशम भाग को ४,३,२ और १ से गुणा करने पर क्रमसे सत्युग, त्रेता, द्वापर और कलियुग के वर्षों का परिमाण होगा और प्रत्येक युगोंका षष्ठांश उसकी सन्धि का परिमाण होता है ॥ ५ ॥ पूर्वोक्त ७१ महायुगों की मन्वन्तर संज्ञा है और मन्वन्तर के अन्त में सत्युग के वर्ष परिमाण (१७२८००० सौर वर्ष) उनकी सन्धि का परिमाण है, इस सन्धिके समय पृथ्वी जलमय × होजाती है ॥ ६ ॥ पूर्वोक्त १४ मन्वन्तर का १ कल्प होता है और इसमें १ आदि की तथा १४ अन्त की कुल १५ सन्धि होती हैं और कल्प के आदि में एक सन्धि कृत युग के परिमाण की होती है ॥ ७ ॥ पूर्वोक्त रीति से १०१०० चतुर्युगी का एक कल्प होता है जिसके अन्त में सब प्राणियों का नाश हो जाता है। एक कल्प का एक ब्राह्म दिन होता है और इसी परिमाण की रात्रि होती है और पूर्वोक्त २ कल्प का एक ब्राह्म अहोरात्र होता है।

उपर्युक्त प्रकार गणित करनेसे एक मन्वन्तरमें निम्नप्रकार वर्ष होतेहैं:—

कलियुग के	सौर वर्ष	४३२०००
द्वापर ,,	,,	८६४०००
त्रेता ,,	,,	१२९६०००
कृतयुग ,,	,,	१७२८०००
एकचतुर्युगी,,	,,	४३२००००

४३२००००×७१=३०६७२००००+सन्धि वर्ष १७२८००० सत्युगके सौर वर्षों के परिमाण के अतएव कुल ३०८४४८००० सौर वर्षका एक मन्वन्तर होता है।

मनुस्मृति के निम्न श्लोकों से विदित है कि ६ मन्वन्तर इस कल्प

तक सूर्य के सामने रहता है और दूसरा अन्धकार में। इसी कारण जब उत्तरीय ध्रुव पर ६ मास का दिन होता है तो दक्षिणीय ध्रुव पर ६ मास की रात्रि और जब दक्षिणीय ध्रुव पर ६ मास का दिन होता है तो उत्तरीय पर ६ मास की रात्रि होती है।

× सूर्यसिद्धान्त के मतानुसार इस समय समस्त प्राणी नष्ट नहीं होते वरन् अनेक स्त्री पुरुष और ऋषि मुनि बच कर वेदों तथा प्राचीन इतिहासों की रक्षा करते हैं।

में बीत चुके हैं और यह सातवां वैवस्वत मन्वन्तर बीत रहा हैः—

स्वायम्भुवस्यास्य मनोः षड्वंश्यामनवोऽपरे ।
सृष्ट वन्तः प्रजाः स्वाः स्वा महात्मानो महौजसः ॥१॥
स्वारोचिषश्चौत्तमिश्च तामसो रैवतस्तथा ।
चाक्षुषश्च महातेजा विवस्वत्सुत एवच ॥२॥

मनु अ० १ श्लो० ६१ । ६२ ॥

अर्थात् स्वायम्भव मनु के पश्चात् छै और बड़े मनु हुए उन्होंने अपने २ सृष्टि पालनके समयमें अपनी २ प्रजा उत्पन्नकीं १ स्वारोचिष २ औत्तमि ३ तामस ४ रैवत ५ चाक्षुष और ६ वैवस्वत ॥ २ ॥

अतएव उपरोक्त प्रमाण से स्वायंभुव मनु से लेकर चाक्षुष पर्यन्त ३०८४४८००० × ६ = १८५०६८८००० वर्ष सृष्ट्युत्पत्ति को व्यतीत होते हैंः-

जिस समय आर्य्यावर्त्त यवनों के अधिकार में आया तो राज्य श्री और स्वाधीनता के साथ ही साथ इस के धार्मिक सिद्धान्तों और वैज्ञानिक ग्रन्थों को भी भारी आघात पहुंचा, उस समय आर्य्यजाति के रक्त की ही नदियें नहीं बहाई गईं वरञ्च उनके साहित्य को बिलकुल निश्शेष करने की पूरी २ चेष्टा की गई और वर्षों तक हम्माम (स्नानालय) संस्कृत ग्रन्थों से ही गरम किये जाते रहे। ऐसे समय में जब कि अनेक विद्याओं के ग्रन्थ लुप्त होगये ब्राह्मणों ने सृष्टि संवत् की रक्षा बड़े ही यत्न से की जिसके लिये हमें उनका कृतज्ञ होना चाहिये। उन्होंने उस समय से यह व्यवस्था करदी थी कि आर्यों का कोई काम विना निम्न संकल्प का पाठ किये सफल नहीं हो सकताः—

ओं तत्सत् श्री ब्रह्मणो द्वितीय प्रहरार्द्धे श्रीश्वेतवाराह कल्पे वैवस्वत मन्वन्तरेऽष्टाविंशति तमे कलियुगे कलि प्रथमचरणे अमुक संवत्सराय नर्द्ध मासपक्षातिथिनक्षत्रलग्नमहूर्त्तेऽत्रेदं कर्म क्रियते ।

अर्थात् ओं तत्सत् ब्रह्म के द्वितीय आधे प्रहर में, श्रीश्वेतवाराह नामक कल्प में, वैवस्वतमन्वन्तर में, अट्ठाइसवीं चतुर्युगी के कलियुग में और उस की पहिली चौथाई में अमुक वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि, लग्न और मुहूर्त्त में यह कर्म किया जाता है ।

उपर्युक्त नियमानुसार गणित करने से वैवस्वत मन्वन्तर की स्था

चतुर्युगी में द्वापर के अन्त तक निम्न प्रकार सृष्टिवत्सर निकलते हैं:-

६ मन्वन्तरों का समय	१८५०६८८०००
वैववस्वत मन्वन्तर के आदि की सन्धि	१७२८०००
२७ चतुर्युगियों का समय	११६६४००००
२८वीं चतुर्युगी के तीन युगों अर्थात् कृत, त्रेता व द्वापर का समय	३८८८०००
कुल योग अर्थात् सृष्ट्युपत्ति से लेकर अट्ठाईसवीं चतुर्युगी के द्वापर तक का समय	१९७२९४४०००

अब यह जानने के लिये कि कलियुग का आरम्भ हुए कितने वर्ष बीते कुछ ग्रन्थों के प्रमाण उद्धृत करते हैं।

(१) सिद्धान्तशिरोमणि नामक ज्योतिष के ग्रन्थ में लिखा है कि:-

याताः षण्मनवो युगानि भमिता न्यन्यद्युगांघ्रित्रयं । नन्दाँद्रीन्दु गुणाँस्तथा शकनृपस्यान्ते कलेर्वत्सर ॥

अर्थात् छै मन्वन्तर बीत चुके सातवां वर्त्तरहा है उसकी सत्ताईस चतुर्युगी वीत चुकीं तथा अट्ठाईसवीं के भी तीन युग वीतगये हैं और चौथा कलियुग है उसके भी शाका शालिवाहन के आरम्भ तक ३१७९ वर्ष वीतगये हैं। अब शकवत्सर (संवत् १९६४ विक्रमी में) १८२९ है अतएव ३१७९+१८२९=५००८ वर्ष कलियुग को आरम्भ हुए वीते।

(२) संस्कृत के प्रसिद्ध कविकालिदासजी अपनी ज्योतिर्विदाभरण नामक पुस्तक में जो विक्रम के संवत् २३ की लिखी है लिखते हैं:-

वर्षे सिन्धुँरदर्शँनाम्वँरगुँणैर्या ते कलौ संमिते ।

मासे माधव संमितेऽत्र विहितो ग्रन्थक्रियोपक्रमः ॥

अर्थात् जब कलियुग के ३०६७ वर्ष बीत चुके थे तब मैं ने माधव (वैशाख) मास में यह ग्रन्थ पूर्ण किया।

अतएव ३०६७+१९६४ संवत् विक्रमी=५०३१-२३=५००८

उपरोक्त प्रमाणों के अतिरिक्त अन्य बहुत से आर्य-शास्त्रों की साक्षी से भी विक्रम संवत् १९६४ ई० तक कलियुग को ५००८ वर्ष बीते इस लिये सृष्ट्युत्पत्ति का समय निम्न प्रकार निकलता है।

सृष्ट्युत्पत्ति से लेकर अट्ठाईसवीं चतुर्युगी के द्वापर तक का समय १९७२९४४०००

संवत् १९६४ विक्रमी तक कलियुग	
के व्यतीत हुए वत्सर	५००८
कुल योग अर्थात् संवत् १९६४ विक्रमी	————
तक सृष्टयुत्पत्ति का समय	१९७२९४९००८

यदि कल्प के वत्सर ४३२०००००० में से १९७२९४९००८ वर्ष कम कर दिये जावें २३४७०५०९९२ वर्ष शेष निकलते हैं और इतने दिनों तक ही यह सृष्टि और वर्त्तमान रहेगी।

भारतवर्षीय ऋषि मुनियों ने केवल पृथ्वी की सृष्टि और स्थिति के काल का ही वर्णन नहीं किया किन्तु उन्होंने इस सारे ब्रह्माण्डके आयु का भी निर्णय किया है जैसा कि सूर्य सिद्धान्तके निम्न श्लोकों से विदित होगाः—

परमायुः शतं तस्य तयाहोरात्र संख्यया।
आयुषोऽर्द्धमितं तस्य शेष कल्पोऽयमादिमः ॥सू० १। २१॥

अर्थात् ऐसे १०० वर्षों के अहारोत्र की संख्या * से ब्राह्म आयु कल्पित की गई जिसमें आधी आयु अर्थात् ५० वर्ष व्यतीत होगयेहैं इस समय ५१ वां (श्री श्वेतवाराह) कल्प वर्त्त रहा है।

सृष्ट्युत्पत्ति के विषय में आधुनिक विद्वानों की साक्षी द्वारा ईसाई मुसलमान आदिकों के सिद्धान्तों का खण्डन।

बाइबिल के अवलोकन से विदित होता है कि मसीह से नूह २९४८ वर्ष पूर्व हुआ है उसी पुस्तक में आदम से लेकर लमक तक की वंशावलिका अवलोकन करने से प्रकट होता है कि नूह और आदम के मध्य १०५६ वर्ष का अन्तर है चूंकि अब मसीही सन् १९०७ है अतएव इन तीनों का योग कर देने से ५९११ वर्ष ईसाइयों के सिद्धान्तानुसार सृष्ट्युत्पत्ति को व्यतीत होते हैं। यूरोप की प्रायः सभी जातियें बाइबिलकी अनुयायीहैं अतएव हमारे शास्त्रों के विषय में जो अन्वेषण उन्होंने किया है वह महाभ्रष्ट और अमाननीय है। प्रथम इसके कि हम इस विषय में कुछ कथन करें यह उचित प्रतीत होता है कि यूरोप के भूगर्भवेत्ताओं के ही द्वारा इस सिद्धान्त की असारता दिखलावें।

* उपर्युक्त लेखानुसार १ कल्प का १ ब्राह्म दिन तथा इतने ही समय की एक रात्रि की कल्पना करके ऐसे ३० अहोरात्रका एक मास और १२ मासका एक ब्राह्म वर्ष कल्पित किया गया है ऐसे १०० वर्ष व्यतीत होने पर महाप्रलय होती है अर्थात् जब ३६००० कल्प बीत जाते हैं तब समस्त ब्रह्माण्ड नष्ट होजाता है।

(१) भूगर्भ विद्या (Geology) के ज्ञाता प्रोफ़ेसर ह्यूसर साहिब प्रकाशित करते हैं कि स्काटलेण्ड के पुराने बरफ़ानी ढेरों में मनुष्यों की हड्डियां हाथी के जोड़ कीमिलती हैं जिन की विद्यमानता का विषय उत्तमोत्तम गणित से २४०००० दो लाख चालीस हज़ार वर्ष निश्चित होता है। (रिसाला थियोसाफ़िस्ट अक्तूबर १८७९)

(२) प्रोफ़ेसर एस० न्यूकोम्प साहिब कहते हैं कि जबसे पृथ्वी ठण्डी होकर वनस्पति उगने के योग्य हुई तब से अब तक २००००००० दो करोड़ वर्ष बीते होंगे (देखो सिक्रेट डाकटरिन जिल्द २ सुफ़हा ६९४)

(३) प्रोफ़ेसर लिचाफ़ साहिब कहते हैं कि पृथ्वीको दो सहस्र अंश की गरमी से दोसौ अंश तक की उष्णता पर पहुंचने के लिये ३५००००००० पैंतीस करोड़ वर्ष बीते होंगे (सिक्रेट डाकटरिनजिल्द २)

(४) प्रोफ़ेसर रीड साहब कहते हैं कि पचास करोड़ वर्ष बीते होंगे जब से यूरोप में वनस्पति आदि उत्पन्न होना आरम्भ हुई (देखो मिस्टर लीड का लैक्चर जो उन्होंने सन् १८७६ में जियोलोजिकल सोसाइटी में दिया था)

(५) प्रोफ़ेसर हक्सली साहब प्रसिद्ध भूगर्भवेत्ता (Geologist) ने अन्त में यह निश्चय किया है कि दुनियां में जब से वनस्पति उगना आरम्भ हुई उस से आज तक १०००००००००० एक अर्ब वर्ष व्यतीत हुए होंगे (देखो वर्ल्ड लाइफ़ सुफ़हा १८७)।

उपर्युक्त प्रमाणों से बाइबिल और क़ुरान में सृष्टि उत्पत्ति का जो समय अत्यल्प वर्णित है उसका भली भांति खण्डन होजाता है। वास्तव में योरुपदेश के परीक्षकों का अन्वेषण अभी पराकाष्ठा को नहीं पहुंचा है परन्तु तब भी हमारे निश्चित किये हुए समय और उनके अन्वेषण में बहुत थोड़ा अन्तर रह गया है। एक समय आवेगा जब वे ऋषि मुनियों के बतलाये हुए सृष्टिकाल का समर्थन करेंगे।

बाइबिल और क़ुरान ईश्वरीयज्ञान के पुस्तक नहीं हैं—

जिस समय वैदिक-भुवन-भास्कर को अविद्यारूपी मेघमालाओं ने आच्छादित करके संसार में अन्धकार का आधिपत्य जमाया तो अत्यन्त आकुल होकर मनुष्य चहुंओर प्रकाश का अनुसन्धान करने लगे। भारतवर्ष में इस अन्धकार के

समय में जो २ मतरूपी दीपक निर्माण किये गये उनका वृत्तान्त पाठक आगे चलकर ज्ञात करेंगे परन्तु आर्यावर्त्त से इतर अन्यदेशों में जिन २ अवैदिक मतों की सृष्टि हुई है उन के धर्मग्रन्थों में कुरान और बाइबिल मुख्य समझे जाते हैं यद्यपि इन पुस्तकों पर विश्वास रखनेवाले मनुष्यों में भी बड़ा मत भेद है जैसे मुसलमानों के दहरिये, नैचरिये इत्यादि ७२ सम्प्रदाय और इंजील को छोड़कर पुराने अहदनामे के मानने वाले यहूदी इत्यादि। इसलिये हमें किसी मत विशेष से सम्बन्ध न रख कर उपर्युक्त पुस्तकों की ही परताल करना उचित है जिस से ज्ञात हो सके कि ये ईश्वरीय ज्ञान के पुस्तक हो सक्ते हैं वा नहीं। विद्वानों ने विचार करके निश्चय किया है कि ईश्वरीय ज्ञान वही होसक्ता है जोः—

(१) सृष्टि की आदि में हो और अन्त तक स्थिति रहे।

(२) किसी देश की भाषा में न हो और वह भाषा संसार की सब भाषाओं में उत्कृष्टता रखती हो।

(३) उस में किन्हीं विशेष पुरुष स्त्रियों के इतिहास और उपाख्यान न लिखे हों।

(४) उस का एक आदेश दूसरे का खण्डन न करता हो।

(५) उस की कोई आज्ञा सृष्टि-नियम के प्रतिकूल न हो।

(६) किसी व्यक्ति विशेष पर ईमान लाने की शिक्षा उसमें न पाई जावे।

(७) जीवहिंसा का उस में विधान न पाया जावे।

(८) किसी पुरुष वा जातिविशेष का पक्षपात न करती हो।

(९) मनुष्यों की विद्या तथा बुद्धि की वृद्धि करने वाली हो।

(१०) सृष्टि के समस्त पदार्थों से लेकर परमात्मा तक का ज्ञान उस में पूर्णतया वर्णित हो।

अब हम उपर्युक्त लक्षणों के द्वाराही पूर्व पुस्तकों की परीक्षा करते हैं।

कुरान—के विषय में प्रसिद्ध है परमेश्वर ने मुहम्मद साहब के द्वारा उसे प्रकट किया है। मुहम्मद साहब जब मक्के से मदीने गये थे हिजरी सन् तभी से जारी हुआ है और इस समय हिजरी सन् १३२५ है अतएव सिद्ध है कि कुरान को बने १३०० वर्ष बीते।

इस पुस्तक में ११४ सूरत और ६६६६ आयत इसप्रकार पाईजातीहैं:—

सं०	विषय	सूरत	आयत
१	भूतपूर्व राजाओं और पैग़म्बरों के क़िस्सेकहानियें।	४०	१०००
२	लूट, खसोट, डाकेज़नी, विग्रह, जिहाद (प्राणादि दण्ड देकर स्वमतावलम्बी बनाना) और पशु-हिंसा इत्यादि।	१६	११५०
३	बद्दुआओं (शापों) दोज़ख़ (नरक) और क़यामत (प्रलय) के सम्बन्ध में तथा काबे का पूजन करना इत्यादि	२०	२०६६
४	सौगन्दों (शपथों) के विषय में जो मुसलमानों का ख़ुदा वारंवार खाता है।	१५	२००
५	स्त्रियों तथा मुहम्मद साहब के गृह-सम्बन्धी झगड़ों के विषय में।	१४	५००
६	बहिश्त (स्वर्ग) हूरों (अप्सराओं) ग़िलमानों (खूबसूरत लौंडों) तथा दूध और शहद (मधु) की नहरों के मिलने के वादे जो काफ़िरों※ के मारने वाले मुसलमानों से किये गये हैं।	५	१६५०
७	ईश्वर प्रार्थना तथा दुआओं (आशीर्वादों) के विषय में	४	१००
	योग	११४	६६६६

बाइबिल—इसके दो खंड हैं एक पुराना धर्म-नियम और दूसरा नया—नये धर्म-नियम में मसीह का जीवन वृत्तान्त मत्ती, मार्क, लूक और योहन उसके चार शिष्यों द्वारा लिखागया है तथा उसमें अन्य बहुत से पत्र सम्मिलित हैं यह भाग इंजील कहलाता है। पुराने धर्म-नियम में १ 'तौरेत' अर्थात् उत्पत्ति, यात्रा, लय, गिनती समुएल और राजाओंकी पुस्तकों का सङ्ग्रह है २ 'ज़बूर' जिस में काल के समाचार, ऐयूब और उप-देश की पुस्तक आदि सम्मिलितहैं और यह सब मिलकर होली बैबिल कहलाती है-ज़बूर को दाऊद बादशाह ने बनाया है जिसे बने २७४२ वर्ष बीते और तौरेत मूसा तथा उसके एक शिष्य की रची हुई है जिसे ३४८० वर्ष होते हैं अब प्रश्न होता है कि आदम से लेकर मूसा

※ यह शब्द भिन्न मतावलम्बियों के प्रति घृणा का द्योतक है।

तक क्या ईश्वर ने लोगों को मूर्ख और असभ्य ही रक्खा और उन्हें कोई ज्ञान नहीं दिया और मूसा रचित तौरेत के पश्चात् ज़बूर की और तत्पश्चात् इंजील को प्रकट करने की उसे क्यों आवश्यकता हुई । सूर्य चन्द्रादि नक्षत्र जिन्हें परमात्मा ने एक वार रच दिया वारंवार बदलने की कभी आवश्यकता नहीं पड़ी परन्तु ज्ञान को उसने क्यों वारंवार बदला ? वास्तव में इन लोगों ने परमात्मा को पूर्ण ज्ञानी समझा ही नहीं है वरञ्च मनुष्यवत् अल्पज्ञ समझ लियाहै कि कभी ना समझीसे कुछ और कभी कुछ आदेश करताहै।

अब हम बैबिल के प्रमाणों से कुछ उन लोगों के चरित्र वर्णन करते हैं जिन्हें ईसाई और मुसलमान दोनों ने ही अपना पैग़म्बर माना है।

(१) आदमने ईश्वर की आज्ञा भंग की और बाग़ अदनसे निकाला गया । उत्पत्ति ३ । १७ ॥

(२) नूह ने अपने सम्बन्धियों को नौका पर न चढ़ने दिया और सब को मरवाया । अंगूरी मद्य (शराब) पीकर हाम तथा अपने भाइयों के सामने नंगा हो गया । उत्पत्ति ९ । २०—२२ ॥

(३) अबरिहाम ने अपनी बहिन से विवाह किया और उसे बहिन ही कहता रहा और झूंठा था । उत्पत्ति १२ । ११–१३ ॥

(४) लूत ने मद्य पी और अपनी दोनों जवान बेटियों से व्यभिचार किया १९ । ३३–३८ ॥

(५) इज़हाक ने अपनी स्त्रीको बहिन कहा और अपने बड़े पुत्रका स्वत्व छोटे को दे दिया ॥ उत्पत्ति २६ । ६–८ व २७ । १-४०

(६) याकूबने अपनी दासियोंसे व्यभिचार किया, ईश्वर (बाइबलि के ईश्वर ?) से कुश्ती लड़ता रहा और अपने मामा की पुत्री के प्रेम में ७ वर्ष सेवा वृत्ति की । उसकी बेटी दीन, ने हमूरके बेटे सिकम से व्यभिचार किया । उत्पत्ति पर्व २९–३४ ॥

(७) दाऊद नबी ने उरियाह की स्त्रीके साथ व्यभिचार किया और उरियाह को मरवाया । समुएल २ पर्व ११ आयत २ २५

(८) दाऊद के बेटे ' अमनून ' ने बीमारी का बहना करके अपनी बहिन 'तमर' को रोटी खिलाने बुलाया और बलात्कार उससे कुकर्म किया । समुएल २ पर्व १३ आयत १–१४ ॥

(९) हज़रत ईसा की माता मरियम की यूसुफ़ के साथ मंगनी हुई थी परन्तु वह विवाह के पूर्व ही गर्भवती हो गई। मत्ती रचित इंजील १ । १८–१९ ॥

(१०) हज़रत ईसा ने एक आदमी का गधा चुरवाया। मत्ती २१।१-७॥
अब हम बाइबिल की केवल एकही सभ्यता से गिरी हुई शिक्षा का उदाहरण देकर अपना कथन समाप्त करते हैं॥

(१) यदि कोई समझे कि मैं अपनी कन्या से अशुभ काम करता हूं जो वह स्यानी हो और ऐसा होना अवश्य है तो वह जो चाहता है सो करे उसे पाप नहीं है॥ करन्थियों को १ प० ८ आयत ३६। ३७

इन पुस्तकों में सर्वथा ऐसी अश्लील और युक्ति-शून्य बातें भरी पड़ी हैं जो मनुष्यों के शुभाचार और विचारों को सर्वथा नष्ट कर देती हैं भला जिन पुस्तकों में अपनी पुत्री के साथ अशुभ काम करने का उपदेश वर्णित हो वे ईश्वर तो क्या किसी विद्वान् और सदाचारी पुरुष की भी बनाई हुई नहीं हो सकतीं। जब संसार में अविद्यान्धकार की वृद्धि होती है तो वेद विरुद्ध ऐसे ही अनेक मत उत्पन्न हो जाते हैं और जब वैदिक मार्तण्ड का उदय होता है तो स्वतः नष्ट हो जाते हैं जैसा कि मनुस्मृति के निम्न लिखित श्लोकों से विदित होगाः-

या वेद वाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः।
सर्वास्ता निष्फला प्रेत्य तमो निष्ठाहिताः स्मृताः॥
उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च मान्यतोऽन्यानि कानिचित्।
तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च॥

मनु० अ० १२ श्लो० ९५। ९६

अर्थात् जो स्मृतियें और दर्शन वेद विरुद्ध हैं वे सब ही परलोक के लिये व्यर्थ हैं वे उत्पन्न होती हैं और नष्ट हो जाती हैं। क्योंकि गिरे हुए समय के विचार होने से वे सब मिथ्या हैं और फल देने वाले नहीं हैं।

ज़ेन्दावस्था भी वैदिक ज्ञान की छाया लेकर बनाई गई है।

जब हम ज़बूर और तौरेत का अवलोकन करते हैं तो हमें मज्जूसियों (पारसियों) के मत के अनेक चिह्न यत्र तत्र उसमें पाये जाते हैं। अतएव स्पष्ट है कि इन पुस्तकों के बनने से पूर्व मज्जूसियों अर्थात आतिशपरस्तों का मत संसार में विद्यमान था। इस मत की उत्पत्ति ज़रदश्त पैग़म्बर से मानी जाती है जिसने कि इस मत की शिक्षा के लिये 'ज़ेन्दावस्था' या 'सफ़रंगदसातीर' नामक धर्म ग्रन्थ को लगभग

५००० पांच सहस्र वर्ष बीते रचा था। इस पुस्तक के अवलोकन से विदित होता है कि यह पुस्तक वैदिक सिद्धान्तों की छाया लेकरही रची गई है क्योंकि इस में वेदों का नाम लिखा है, चार वर्णों का नाम भी पाया जाता है, यज्ञोपवीत का विधान है और हवन के लाभ वर्णन किये गये हैं, आवागमन को माना है तथा गोमांस के भक्षण का भी निषेध किया है। ज़ेन्दावस्था में अनेक शब्द मादर, पिदर, हफ़्ता, बाज़ू, अज़म आदि ऐसे आये हैं जो संस्कृत के मातृ, पितृ, सप्ताह, बाहू, अहम् आदि शब्दों से बिगड़ कर बने हुए स्पष्ट प्रतीत होते हैं। निदान जर्मन देशके प्रसिद्ध विद्वान् मैक्समूलर साहब लिखते हैं कि:—

I still hold that the name ज़न्द derived from छन्द।

अर्थात् मेरा अभी तक विश्वास है कि पारसी शब्द 'ज़ेन्द' की उत्पत्ति संस्कृत शब्द 'छन्द, से हुई है। अवस्था शब्द संस्कृत का है जिसके अर्थ क़ानून के हैं अतएव जो क़ानून कि छन्दों में रचा गया है उसका नाम 'ज़ेन्दावस्था, है। इस के अतिरिक्त गो, उक्षन्, पव वैद्य, नमस्ते, वरुण, वृत्रहन्, वायु, गाथा आदि अनेक शब्द यथा लक्ष्य ज़ेन्दावस्था में पाये जाते हैं गोमेज़ (गोमेध)का भी वर्णन आया है परन्तु वहां उसके अर्थ भूमि खोदने के लिये गये हैं गाय को वध करने के नहीं लिये गये। एक स्थान पर लिखा है कि ज़रदश्त पैग़म्बर का व्यास जी से मुबाहिसा (शास्त्रार्थ) हुआ था इत्यादि अनेक प्रमाणों से सिद्ध होता है कि ज़ेन्दावस्था क़ुरान और बाइबिल से पुरानी है और वैदिक शिक्षा की छाया लेकर बनाई गई है।

आर्यावर्त्त देश जिसमें हम लोग वास करते हैं उसकी सीमा (हद) प्राचीन काल में कहां से कहां तक मानी जाती थी इसके परिज्ञानार्थ हम मनुस्मृति का एक श्लोक उद्धृत करते हैं:—

आर्यावर्त्त देशकी सीमा और उसका प्राचीन इतिहास।

आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमाम्।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्त्तं विदुर्बुधाः॥ मनु॰ २। १२

अर्थात् पूर्व में समुद्र से लेकर पश्चिमके समुद्र पर्यन्त और उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिणीय पर्वत के मध्य में जितने देश हैं वह भूभाग आर्यावर्त्त देश कहलाता है।

महाभारतादि ग्रन्थों के अवलोकन से विदित होता है कि सृष्टि के आदि से ही आर्य्य लोग इस देश में वास करते चले आये हैं इसी कारण यह देश आर्यावर्त्त कहलाता है। उपर्युक्त ग्रन्थों में यह भी लिखा है कि सृष्टि की आदि से लेकर महाभारत के युद्ध पर्यन्त आर्य्य लोग ही इस समस्त भूमण्डल का चक्रवर्त्ती राज्य करते रहे हैं। जिन में से अनेक प्रतापशाली सम्राटोंके नाम भी उपर्युक्त ग्रथों में लिखे पाये जाते हैं। सम्प्रति भारत का अति प्राचीन इतिहास उपलब्ध नहीं होता इस लिये यूरोप के अनेक विद्वानों का कथन है कि आर्यावर्त्तदेश के निवासी जो अपनी सभ्यता को इतना प्राचीन बतलाते हैं इस में बहुत कुछ अत्युक्ति है, और अनेक विद्वानोंने यह भी सिद्ध करनेकी चेष्टा की है कि प्राचीन आर्यों ने इतिहास की उत्कृष्टता का पूर्णतया अनुभव नहीं किया इसी कारण उन के पास ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं पाये जाते। जो लोग आर्यों की सभ्यता और उन के निर्धारित सृष्टि संवत् की सत्यता में सन्देह करते हैं यह उन का भ्रम है क्योंकि हम यूरोप देश के अनेक भूगर्भवेत्ताओं की साक्षियें देकर सिद्ध कर चुके हैं कि भूगर्भ विद्या (Geology)के अनुसार भी सृष्टिको उत्पन्न हुए एक अरब वर्ष न्यूनसे समय कदापि नहीं बीता औरजो मनुष्य यह कह कर कि "आर्य्य लोग इतिहास लिखना नहीं जानते थे" उन्हें असभ्य सिद्ध करने की चेष्टा में लगे हुए हैं उन्हें फ़रांसीसी विद्वान् मि० ओरियण्टलिस्ट (Orientalist) के इस कथन पर ध्यान देना चाहिये कि जब "हिन्दुओं (आर्यों) में इतिहास लिखने की परिपाटी ही नहीं थी तो अब्बुलफ़ज़ल ने हिन्दुओं का प्राचीन इतिहास लिखने के लिये सामग्री कहां से प्राप्त की थी?" करनल टाड साहब भी 'राजस्थान' नामक इतिहास की भूमिका में लिखते हैं कि "हिन्दु जैसी बड़ी ही सभ्य जाति के लोग जिन में सद्विद्याओं का पूर्णरूपेण प्रचार था और जो शिल्प, कविता एवं सङ्गीत शास्त्र आदि अनेक कलाओं से स्वयं ही अभिज्ञ न थे वरञ्च दूसरों को भी सिखाते थे क्या वे अपनी ऐतिहासिक घटनाओं और राजशासन के कार्यों को लिखनेकी साधारण रीति कुछ भी न जानते रहे होंगे?" यह तो रहे निष्पक्ष विदेशियोंके हमारे इतिहासोंके विषयमें सरल विचार परन्तु क्या यह सत्य है कि आर्य्य लोगों

ने इतिहास लिखने की ओर ध्यान नहीं दिया ? जिस देश में रामायण और महाभारत जैसी इतिहासों की दो बड़ी २ पुस्तकें मिलती हैं, जिस देशमें १८ पुराण और उपपुराण जैसे ग्रन्थ अनेक उपाख्यानों और राज-वंश-तालिकाओं से पूरित इस समय पाये जाते हैं क्या सम्भव है कि उस देश में कभी वास्तविक ऐतिहासिक ग्रन्थ विद्यमान न होंगे? वास्तव में आर्यावर्त्त में प्राचीन अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थ विद्यमान थे और यदि वे बौद्धों, जैनियों और यवनों द्वारा नष्ट न किये जाते तो हम सृष्टिकी आदि से लेकर महाराज पृथ्वीराजके समय तक का मुकम्मिल एतिहास पाठकों की सेवा में प्रस्तुत कर सकते परन्तु शोक कि इन वैदिक-धर्म-विद्वेषी मलिनात्माओं ने इन ग्रन्थों को नष्ट कर के इतनी हानि इस देश को पहुंचाई जितनी कि एक २ पुस्तक के बदले में दो २ आर्य पुरुषों का जीवित अग्निसंस्कार कर देने से मेरे विचार में कदापि नहीं पहुंचती। इन अविवेकी पुरुषों ने ऐतिहासिक पुस्तक ही नष्ट नहीं किये वरञ्च अनेक विज्ञान और कलाकौशल के ग्रन्थभी नष्टकर दिये जो इस समय नहीं पाये जाते। वेदोंकी ११२७शाखायें, मानव-गृह्-सूत्र, ज्योतिषके कई अपूर्व ग्रन्थ, धनुर्वेद(युद्ध क्रियाका पुस्तक) आदि अनेक ग्रन्थ इस समय नहीं मिलते । किसी समय में एक 'भूत-भाष' नामक इतिहास का पुस्तक लिखा गया था वह भी इस समय नहीं मिलता । वर्त्तमान भविष्यपुराण में जिस प्राचीन भविष्य पुराण का वर्णन पाया जाता है वह भी सम्प्रति उपलब्ध नहीं है। उपर्युक्त पुस्तकों का उल्लेख तो हमने इस लिये कर दिया कि उन के नाम इस समय के वर्त्तमान पुस्तकों में मिलते हैं परन्तु नहीं कह सके कि इन के अतिरिक्त और कितने ग्रन्थ-रत्न नष्ट कर दिये गये हैं। इस समय जो श्री मद्भागवत्त आदि १८ पुराण के पुस्तक मिलते हैं उन के ऐतिहासिक वृत्त यथातथ्य मानने योग्य नहीं हैं क्योंकि हमारा विचार है कि जब मुसलमानों ने ऐतिहासिक ग्रन्थों को नष्ट करदिया तो ब्राह्मणों ने अनेक ऐतिहासिक वृत्त जो उन्हें मालूम थे या जिस से जैसे सुने लेख बद्ध कर दिये इन्द्र, वृत्रासुर, गौतम, अहल्या और त्रिशङ्कु आदि राजाओं के इतिहास जो पुराणों में वर्णित हैं हमारे इस कथन की पूर्णतया पुष्टि कर रहे हैं क्योंकि वे वास्तव में ऐतिहासिक घटनायें

नहीं हैं वरन् वेदों और ब्राह्मणादि ग्रन्थों में अलङ्कार रूप में उनका वर्णन आया है। इस के अतिरिक्त इन पुराणों में अनेक साम्प्रदायिक झगड़े बखेड़े शैव, शाक्त और वैष्णव आदिकों के पाये जाते हैं और विधि, निषेध की आज्ञायें भी इन में ठौर २ भरी पड़ी हैं जो कि पुराणों का विषय ही नहीं है यथाः—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥ कूर्मपुराण॥

अर्थ (सर्ग) संसार की रचना (प्रतिसर्ग) लय (वंश) वंशावलि (मन्व०) मन्वन्तरों का उपकथन (वंशा०) वंशों में होने वाले पुरुषों के चरित्र जिस में यह पांच बातें हों वह पुराण कहलाता है।

उपर्युक्त प्रमाण से विदित है कि इस समय जो पुराण पाये जाते हैं वे पौराणिक लक्षणों से युक्त नहीं है और जिन पुस्तकों में अनेक असम्भव एवं युक्ति और सृष्टिक्रम के विरुद्ध बातें भरी पड़ी हैं और एक की ऐतिहासिक घटनायें और वंशावलियें दूसरों की ऐतिहासिक घटनाओं और वंश-तालिकाओं से नहीं मिलती हैं ऐसी दशा में उनके कथन का सर्वांश में प्रमाण करना हमारी भूल है और यह सब बातें हमारे विश्वास को और भी दृढ़ कर देती हैं कि उनसे पहिले इतिहास के अनेक ग्रन्थ अवश्य विद्यमान होंगे।

अब हम यवनों द्वारा आर्ष ग्रन्थों के नष्ट-भ्रष्ट किये जाने विषय में कुछ साक्षियें उद्धृत करते हैं:—

(१) आनरेबिल राजा शिवप्रसाद जी सी० एस० आई० लिखते हैं कि आत्म तत्त्व, ज्योतिष, गणित, भूगोल, खगोल, इतिहास, नीति, व्याकरण काव्य, अलङ्कार, न्याय, नाटक आदि के अच्छे २ ग्रन्थ (भारतवर्ष में) मौजूद थे परन्तु मुसलमानों की अमलदारी में हिन्दुओं के सब शास्त्र नष्ट कर दिये गये (देखो भूगोल हस्तामलक)॥

(२) फ़तूहात फ़ीरोज़शाही में लिखा है कि फ़ीरोज़शाह तुग़लक़ ने कोहाने में हिन्दुओं की पोथियां फूंक दीं।

(३) कश्मीर के पंडित कहते हैं कि यहां पर मुसलमानों ने पुल बांधने के लिये लकड़ी और पत्थर की जगह असंख्य पुस्तकों से * * * नदी को भर दिया।

(४) अलाउद्दीन ख़िलजी ने अनहलवाड़े पट्टन के प्रसिद्ध पुस्तकालय को भस्म कर दिया।

(५) सैयद् गुलाम हुसैन अपनी मशहूर तवारीख़ 'सैरेमताख़ूख़रीन' की जिल्द अव्वल पृष्ठ १४० पर लिखता है कि औरंगज़ेब को जब और जहां हिन्दुओं के पुस्तक हाथ लगते हैं जला देता है।

(६) रायबहादुर शरच्चन्द्रदास भारतवर्ष के प्राचीन विश्व विद्यालयों का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि 'बुद्ध गया' में एक नौमंज़िला लाइब्रेरी थी और इसी प्रकार का एक पुस्तकालय 'नालन्दह' में भी था जिन में बौद्धमत की पुस्तकों के अतिरिक्त प्राचीन समय की अनेक उत्तम से उत्तम पुस्तकें विद्यमान थीं एवं दोनों से बढ़ कर 'ओदन्तपुरी' के ग्रन्थ-भाण्डार में प्राचीन पुस्तकों का सङ्ग्रह था परन्तु सन् १२०२ ई० में जब कि बख़्तियार ख़िलजी के सेनापति मुहम्मद बिन साम ने इस प्रान्त को विजय किया तो उसने आज्ञा दी कि समस्त पुस्तकें जला दी जावें निदान भारत की लाखों और करोड़ों वर्ष की कमाई को इस पापात्मा ने एक दम में भस्मीभूत करदिया। (देखो सरस्वती जुलाई १९७६ पृष्ठ ७)

इसी प्रकार के अनेक प्रमाण प्रस्तुत किये जासक्ते हैं परन्तु स्थानाभाव से हम इस विषय को यहीं समाप्त किये देते हैं।

भारत के धार्मिक और ऐतिहासिक ग्रन्थों को नष्ट करने में गोरी जातियों की कुटिलनीति

परमात्मा की सृष्टि में हम कोई वस्तु ऐसी नहीं पाते जो निराधार स्थित हो। यदि सघन-लता-कुञ्जों और गगन-भेदी-विशाल-वृक्षों को हम अत्युच्च-शैल-शिखरों के आश्रित अवलोकन करते हैं तो वे अति प्रवृद्ध और दीर्घकाय पर्वत-मालायें भी भगवती-धरणी का आश्रय लेकर संसार में स्थित हो रही हैं। जिस प्रकार संसार की किसी वस्तु को हम निरावलम्ब नहीं पाते उसी प्रकार संसार की कोई जाति भी निराश्रित अपना अस्तित्व संसार में स्थिर नहीं रख सक्ती और उसका यह अवलम्ब अपना इतिहास है। इस समय हम देख रहे हैं कि अमरीका के आदिम निवासी रेड इण्डियन (Read Indian) तथा आफ्रिका, और आस्ट्रेलिया के जङ्गली लोग जो अपना इतिहास नहीं रखते दिन प्रतिदिन संसार से नष्ट होते चले जारहे हैं

और यूरोप देश की जातियों ने जिन्होंने अपने इतिहासों की रक्षा की है शनैः २ उन्नति के सोपान पर चढ़ रही हैं। कुछ समय बीता कि विलायत के कतिपय समाचारपत्रों में इस पर विचार चला था कि गोरी जातियों की मनुष्य संख्या अहर्निश बढ़ती चली जा रही है अन्त में इन के लिये इतनी भूमि कहां से आवेगी? उन्होंने निश्चित किया कि एशिया इनके रहने को उपयुक्त नहीं है क्योंकि एशिया का प्रायः प्रत्येक देश अपना इतिहास रखता है अन्त में उन्होंने अमेरिका, अफ़्रीका और आस्ट्रेलिया के देशों को इन के लिये मनोनीत किया जहां के निवासी असभ्य और जंगली हैं तथा अपना कोई इतिहास नहीं रखते, इसका दूसरा अर्थ यह भी है कि गोरीजातियों का सदा सर्वदा यह प्रयत्न रहता है कि हम से भिन्न जातियों का इतिहास सर्वतोभावेन नष्ट होजावे। क्योंकि जब तक विजित जाति के पास अपना इतिहास उपस्थित है विजेता जाति कभी अपना राज्य निष्कण्टक नहीं समझ सक्ती। जिस प्रकार एक जाति अपनी प्राचीनता के गौरव का स्मरण रखती हुई भिन्न जाति की आधीनता बहु-काल-पर्यन्त स्वीकार नहीं कर सक्ती उसी प्रकार एक धर्म को मानने वाली जनसंख्या अपने से भिन्न धर्मावलम्बियों की आधीनता (यदि वह संख्या में उस से अत्यल्प न हो) कदापि स्वीकार नहीं कर सक्ती। निदान मारिस साहब जो इण्डिया कौन्सिल में हैं कहते हैं कि:—

If a conqueror practises a different religion to the majority of his subjects, and is determined to reserve the privileges of command to the followers of his own creed; his best policy will be to convert, by force if neccessary, all his subjects to that creed; by that means he will secure homogenous empire.

अर्थात् यदि विजेता (राजा) का धर्म भिन्न हो और वह अपना राज्य अपने सहधर्मियों द्वारा रखना चाहे तो सर्वोत्तम नीति यह होगी कि विजित (प्रजा) को अपने धर्म का अनुयायी कर डाले यदि यह कार्य सरल रीति से साध्य न हो तो बलात्कार (ज़बरदस्ती) किया जावे। तभी एक प्रकार का राज्य होकर सदैव आधीन रहेगा।

यद्यपि वर्त्तमान राज्य व्यवस्था के विद्यमान होते गवर्नमेण्ट के विषय में यह कल्पना करनी कि यह उसका मत है अन्याय है परन्तु

जो गोरे-कर्मचारी हमारे ऊपर शासन करने के लिये भारतवर्ष में आते हैं उन्हें इस बात की अहर्निश चिन्ता लगी रहती है कि ३३००:०००० तैंतीस करोड़ भारतवासियों पर ७०००० सत्तर हज़ार सिविलियन तबतक निष्कण्टक शासन नहीं करसक्ते जब तक उन्हें अपने इतिहासों से घृणा उत्पन्न न होजावे और वे सबही हमारे मतावलम्बी (ईसाई) न बनजावें निदान उनकी श्रद्धा उन के धार्मिक तथा ऐतिहासिक ग्रन्थों से दूर करने के लिये " हण्टर साहब " आदि योरुप के विद्वानों ने जो भारतवर्ष के ऐतिहासिक पुस्तक लिखे हैं उनका किञ्चित् सारांश हम यहां प्रकाशित करते हैं:-

(१) आर्य्य शब्द संस्कृत के आर् शब्द से बना है जिसके अर्थ हल के हैं उस समय यह लोग कृषिकर्म (खेती) करते थे इसी लिये इन का आर्य्य नाम प्रसिद्ध हुआ ।

उत्तर -आर्य्य शब्द आर् शब्द से नहीं निकला वरन् "ऋ" धातु में "ण्यत्" प्रत्यय लगाने से सिद्ध होता है और इस के अर्थ स्वामी, गुरु, पूज्य, श्रेष्ठ, शान्तिचित्त आदि के हैं जैसा कि 'शब्दस्तोम महानिधिः' नामक संस्कृत कोष में लिखा है:—

आर्य्य ❋ पु० ऋ+ण्यत् । स्वामिनि, गुरौ, सुहृदि च । श्रेष्ठकुलोत्पन्ने, पूज्ये, श्रेष्ठे, सङ्गते, नाट्योक्तौ मान्ये, उदारचित्ते, शान्तिचित्ते, " कर्त्तव्यमाचरन् काममकर्त्तव्य मनाचरन् । तिष्ठति प्रकृताचारे स वा आर्य्य इति स्मृतः" इत्युक्त लक्षणे जने च त्रि० ॥

इसके अतिरिक्त आर्षग्रन्थों में भी कहीं आर्य्य शब्द कृषक के अर्थ में ग्रहण नहीं किया गया है वरन् उपर्युक्त अर्थों में ही आया है यथाः-

आर्य्यपुत्र ! पिता माता ॥ वा० अयोध्या काण्ड २७ । ४ ॥ अधिरो हार्य ! पादाभ्यां अयो० ११२ । २१ ॥ आर्य्य पुत्र ! सहानुज ॥ आरण्य० ४३ । २ ॥ भरतस्यार्य पुत्रस्य ॥ आर० ४३ । १८ ॥ इत्यादि २

उपर्युक्त वाक्यों में सीताजी ने रामचन्द्र तथा भरत को आर्य्यपुत्र तथा भरत ने रामचन्द्रजी को आर्य्य कहा है जिन्होंने कि अपने समस्त जीवन में कभी कृषिकर्म नहीं किया । इसी प्रकार रामायण तथा महाभारत में अनेक स्थलों पर आर्य्य शब्द पूज्य, श्रेष्ठ, शान्तचित्त और उदारचरितादि अर्थों में व्यवहृत किया गया है जिन प्रमाणों को हम

स्थानाभाव से यहां पर उद्धृत नहीं करते। संस्कृत में "आर्" कोई धातु भी नहीं है अतएव सिद्ध है कि इस शब्द का गढ़नेवाला संस्कृत से अनभिज्ञ है और आर्षग्रन्थों के तो मानों उस ने कभी दर्शन ही नहीं किये।

(२) आर्य्य लोग इस देश के आदिम निवासी नहीं हैं किन्तु मध्य एशिया के पश्चिमीय भाग (तुर्किस्तान) से यहां आकर आबाद हुए हैं।

उत्तर-आर्यों के किसी ग्रन्थ में यह नहीं लिखा कि आर्य लोग ईरान वा तुर्किस्तान से आकर यहां आबाद हुए हैं वरञ्च अनेक पुस्तकों में लिखा है कि आर्यों ने इस देश को बसाया है जैसा कि मनुस्मृति के निम्न श्लोक से विदित होगाः—

सरस्वती दृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ।
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्त्तं प्रचक्षते ॥ २ । १७ ॥

अर्थात् सरस्वती और दृषद्वती (ब्रह्मपुत्रा) दोनों नदियोंके मध्य का देश जो देवों (आर्यों) ने बसाया है ब्रह्मावर्त्त कहलाता है ॥

उपर्युक्त श्लोक में "तं देवनिर्मितं देशं,, वाक्य स्पष्ट बतला रहा है कि आर्यों ने ही इस देश को बसाया है। जब आर्योंके ग्रन्थ इस बात की साक्षी दे रहे हैं कि आर्य्य यहां के आदिम निवासी हैं तब विदेशियों की प्रमाणशून्य बातों को कौन बुद्धिमान् पुरुष मान सकता है? यदि आर्यों के फ़ारिस (ईरान) के निकट आने जाने के कुछ चिह्न* मिल भी जावें तो वे भी विदेशियों का पक्ष कदापि पुष्ट नहीं कर सकते क्योंकि प्राचीन आर्य्य युद्ध और व्यापार आदि के लिये भरतखण्ड की सीमोल्लङ्घन करके दूर देशों में जाते थे और बहुत से आर्य्यपुरुष ईरान, तूरान, आदि देशों में यहां से उठ कर जा भी बसे थे जैसा कि मनु जी ने लिखा हैः-

शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः ।
वृषलत्वं गतालोके ब्राह्मणादर्शनेन च ॥

---

* फ़ारसी भाषा के बिरादर, पूर, सर, चश्म, आब, गन्दुम, शीर, शाख़, अस्प, ख़र, शग़ाल, बहमन आदि अधिकांश शब्द संस्कृत के भ्रातृ, पुत्र, शिर, चक्षु, अप्, गोधूम, क्षीर, शाखा, अश्व, खर, शृगाल, बाहुमान् आदि शब्दों से बिगड़ कर बने हैं इसी प्रकार के अन्य भी चिह्नों से आर्यों का दूर देशों में जा बसना ही सिद्ध होता है परन्तु जो इन चिह्नों से यह अर्थ निकालते हैं कि आर्य ईरानसे यहां आकर आबाद हुए हैं यह उनका भ्रम है।

पौण्ड्रकाश्चोड्रद्रविड़ाः काम्बोजा यवनाः शकाः।
पारदा पह्लवाश्चीनाः किराता दरदाः खशा ॥ १० । ४३-४४

अर्थात् कितनी ही क्षत्रिय जातियें क्रिया का लोप होने अर्थात् वैदिक संस्कार न करने और मद्य मांसादि का सेवन करने से वृषलत्व (शूद्रत्व) को प्राप्त होगईं वे इस समय पौण्ड्रक (मेदिनीपुर प्रदेश) ओड्र (कटक) द्रविड़ (दक्षिण देश) काम्बोज (अरब) यवन (यूनान) शक (तुर्किस्तान) पारद (चीनका एकखण्ड) अपह्लव (काबुल) चीनाः (चीन) किरात (सौताल परगना) दरद (भूटान) तथा खश (ईरान) में बसती हैं ॥

(३) आर्य लिखना नहीं जानते थे और अपनी सन्तानों को वेद मन्त्र कण्ठस्थ कराया करते थे ॥

उत्तर-आर्य्य लोग वेद मन्त्रों को क्या इस समय कण्ठस्थ नहीं करते ? द्रविड़ देशमें लक्षों ब्राह्मणपुत्र अब भी वेदोंको कण्ठस्थ करते हैं तो क्या इस का यह अर्थ है कि वे लिखना नहीं जानते ? प्राचीन समय के जो बाण मिलते हैं उन पर राजाओंके नाम खुदे हैं तो क्या यह उनके लिखना जानने का प्रमाण नहीं है ? पाणिनि मुनि का " लिख अक्षर विन्यासे " क्या हमारे कथनकी पुष्टि नहीं कर रहा ? आर्य लोग सृष्टि काल के आरम्भ से ही लिखना जानते हैं जैसा कि इस वेद मन्त्र में लिखा है:-

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्
ऋग्वेद १० । ७१ । ४ ॥

अर्थात् " मूर्ख वाणी को देखता हुआ नहीं देखता और सुनता हुआ नहीं सुनता " भला विना लिखी हुई वाणी को मनुष्य कैसे देख सक्ता है ? इससे सिद्ध है कि सृष्टि के आरम्भ से ही आर्य्य लोग लिखना पढ़ना जानते थे ॥

(४) वे (आर्य्य) अग्नि, इन्द्र और वायु आदि देवताओं की पूजा करते थे और बादल के गर्जने को इन्द्र का शब्द और बिजुली की चमक को उसके भाले समझते थे उनका विश्वास था कि इन्हीं भालों से इन्द्र काले बादलों को छेद कर खेतोंमें पानी पहुंचाता है।

उत्तर-जो लोग संस्कृत के शब्दों का ठीक उच्चारण भी नहीं कर सकते यदि वे वेदमन्त्रोंके अर्थोंका अनर्थ कर डालें तो कोई आश्चर्य

नहीं है। उपर्युक्त वेद वाक्य ऐसे मनुष्योंकी दशा पर ठीकही घटता है कि "मूर्ख वाणी को सुनता हुआ भी नहीं सुनता,, अर्थात् वाणी को सुनकर भी उसके ठीक २ अभिप्रायको नहीं समझ सक्ता। वास्तव में बात यह है कि ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभावानुसार उसके असंख्य नाम हैं और अग्नि आदि शब्द वेदों में परमात्मा के ही वाची आये हैं जैसा कि निम्न वेद मंत्र से प्रकट होगाः—

इन्द्रं॑ मि॒त्रं वरु॑णम॒ग्निमा॑हु॒ रथो॑ दि॒व्यः स सु॑प॒र्णो ग॒रुत्मा॑न्।
एकं॒ सद्विप्रा॑ बहु॒धा व॑दन्त्य॒ग्निं य॒मं मा॑त॒रिश्वा॑नमाहुः॥

ऋ० १। १६४। ४६॥

अर्थात् विद्वान् लोग एक ही ब्रह्म को इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि आदि नामों से स्तुति करते हैं।

वेद के मन्त्रों में यही तो विलक्षणता है कि जहां वे ईश्वर की स्तुति का उपदेश करते हैं वहीं वे एक २ प्राकृतिक वस्तु के गुणों से भी मनुष्योंको अभिज्ञ कर रहेहैं क्योंकि जब तक मनुष्य जड़ पदार्थों के गुण, दोष भली भांति नहीं जानता तब तक उसे परमात्मा का ज्ञान पूर्णतया कदापि नहीं होता इसीलिये महर्षि कपिल ने अपने सांख्य शास्त्र में प्रकृति की सविस्तर व्याख्या की है॥

अब हम एक वेद मन्त्र उद्धृत करतेहैं जिससे विदित होगा कि इन्द्र के वज्र वा भालों का अभिप्राय क्या हैः—

अह॒न्वृत्रं वृ॑त्र॒तरं॒ व्यं॑स॒मिन्द्रो॒ वज्रे॑ण मह॒ता व॒धेन॑।
स्कन्धां॑सीव॒ कुलि॑शेना॒ विवृ॑क्ण॒ाहिः श॑यत उप॒पृक्पृ॑थि॒व्याः॥

ऋ० १। ७। ३२। ५॥

अर्थः—हे सेनापते! जैसे (इन्द्रः) सूर्य वा बिजुली (महता) अति विस्तार युक्त (कुलिशेन) अति धार वाले खड्ग रूप (वज्रेण) किरण समूह से (विवृक्ण) करे हुए (स्कन्धांसीव) कन्धों के समान (व्यंसम्) जिस प्रकार छिन्न भिन्न हों वैसे (वृत्रतरं) अत्यन्त सघन (वृत्रम्) मेघ को (अहन्) मारता व छिन्न भिन्न करके पृथिवी पर वर्षाता है और वह (बधेन) सूर्यके गुणोंसे मृतकवत् होकर (अहिः) मेघ (पृथिव्या) पृथ्वी के (उपपृक) ऊपर (शयते) सोता है वैसे ही शत्रुओं का हनन कीजिये।

इसका भावार्थ यह है कि हे सेनापति! जैसे इन्द्र, वृत्र को वज्र से मारता है और भूमि पर गिरा देता है वैसे ही आप शत्रुओं का

हनन करें। अब उपर्युक्त अर्थ में इन्द्र का मन्त्र सूर्य, वज्र का अर्थ किरण और वृत्र वा अहिः का अर्थ मेघका ग्रहण किया गया है उस में प्रमाण क्या है ? अब हम इसके प्रमाण देते हैं:—" वृत्रो मेघ इति निरुक्त २ । १६ ॥ " " अहरिति मेघनामसु पठितम् ॥ निघण्टु १ । १० " जब वायु से प्रतारित होकर दो मेघ आपस में मिलते हैं तो उनके मिलने से शब्द उत्पन्न होता है और रगड़ से विद्युत् उत्पन्न होती है। वेदों में " अस्मिन्तहत्यर्णवेऽन्तरिक्षे भवा अधि " आदि मन्त्रों बतलाया गया है कि बिजुली; क्या जल, क्या पृथ्वी, क्या सूर्य सर्वत्र विद्यमान् है यद्यपि बिजुली के कुलिश, पवि, वज्र आदि नाम प्रसिद्ध हैं और बिजुली के गिरनेको साधारण मनुष्य भी वज्रपात हुआ बोलते हैं इसलिये इसका प्रमाण देने की आवश्यकता न समझकर हम महाभारतका केवल एक प्रमाण उद्धृत करते है जिसमें इन्द्र शब्द सूर्य के अर्थ में आया है।

धाताऽर्य्यमा च मित्रश्च वरुणोंऽशो भगस्तथा ॥
इन्द्रो विवस्वान् पूषा च त्वष्टा च सविता तथा ।
पर्जन्यश्चैव विष्णुश्च आदित्या द्वादश स्मृताः ॥आदिपर्व२६।६५-६६॥

अर्थात् धाता, अर्य्यमा, मित्र, वरुणांश, भग, इन्द्र, विवस्वान् पूषा, त्वष्टा, सविता, पर्जन्यः और विष्णु; ये आदित्य के बारह नाम और भी हैं।

उपर्युक्त मन्त्र में यह बतलाया गया है कि आकाशमें जो पर्वतों के समान अति स्थूल बादल दृष्टिगत होते हैं यदि वे पृथ्वी पर गिर पड़ें तो प्राणियों को नष्ट करदें इसलिये सूर्यकी किरण और बिजुली अपने तेज (गर्म्मी) से उन्हें वाष्प रूप में परिणत करके भूमि पर गिराती हैं। इसी प्रकार अन्य मन्त्रोंमें भी जल, सूर्य, पृथ्वी आदिकों में बिजुली की विद्यमानता दिखला कर अनेक कार्योंकी सिद्धि बतलाई गई है। सम्प्रति अनेक मनुष्य महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के ऊपर यह दोषारोपण करते हैं कि उन्होंने वेदों के अर्थ बदल दिये हैं परन्तु महर्षि प्रत्येक मन्त्रार्थके साथही वेदके ६ अंगों और ६ उपांगों की साक्षियें उद्धृत करते हैं अर्थात् महर्षि, ब्रह्मा से लेकर व्यास पर्यन्त जो ऋषि, मुनि हुए हैं और उन्होंने वेदों के जो अर्थ ग्रहण

किये हैं वही ग्रहण करते हैं तब दूसरे पुरुषोंके मनमाने वेदभाष्य का जो आर्षग्रन्थोंके सर्वथा प्रतिकूल हो कौन बुद्धिमान प्रमाण कर सकता है और यह विश्वास कर सकता है कि वेदों में भी इन्द्र, वृत्रासुर आदि मनुष्यों के इतिहास पाये जाते हैं ? । वेदों में अनेक सूक्ष्म विषय अलङ्कारोंमें वर्णन कियेहैं क्योंकि वैज्ञानिक विषय शुष्क (Dry) होने के कारण इस प्रकार सुगमता से समझ लिये जाते हैं। यदि हम इस पुस्तक में कहीं यह लिखदें कि ज्यों २ मनुष्य वैदिक महासागर में गोते लगावेंगे वैसे ही वे मुक्ता रूपी अनेक सद्विद्याओं को प्रकाशित करके मनुष्यों के लिये सुख की सामग्री एकत्रित कर देंगे और कोई हमारे इस कथन का यह अभिप्राय निकाले कि इस पुस्तक का लेखक वेदों को समुद्र और विद्याओं को मोती समझता है तो यह कथन हमारे साहित्य में उसकी अनभिज्ञता ही सिद्ध करेगा।

(५) आर्य्य लोग एक प्रकार की मद्य (शराब) पीते थे जो सोम के अर्क से बनाई जाती थी।

उत्तर–शान्तं ! शान्तं ! ! ज्ञात होता है कि इन लेखकों ने या तो आर्योंके ग्रन्थोंका अवलोकन ही नहीं किया अथवा इनका लेख सर्वथा पक्षपात से पूरित है देखिये धर्मशास्त्र में क्या लिखा है:—

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः ।
महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह ॥

अर्थात् ब्रह्महत्या, मद्य का पीना, चोरी, गुरु-पत्नी का समागम और इन के साथ संसर्ग रखना यह पांच महापातक कहलाते हैं।

जब आर्षग्रन्थों में मद्य के छूने तक का प्रायश्चित लिखा है तो यह कहना कि आर्य्य लोग मद्य पीते थे प्रमाद है। आयुर्वेद शास्त्र का मदनपाल निघण्टु एक प्रामाणिक ग्रन्थ है देखिये उस में क्या लिखा है:—

सोमवल्ली यज्ञनेता सोमक्षीरी द्विजप्रियः ।
सोमवल्ली त्रिदोषघ्नी कटुस्तिक्ता रसायिनी ॥

अर्थात सोमवल्ली त्रिदोष (वात, पित्त, कफ) को नष्ट करती है और कड़वी, चर्परी एवं रसायन है।

इस में कहीं भी सङ्केत नहीं है कि सोमलता मादक (नशा करने वाली) है जिन्हें वैद्यक के इस ग्रन्थ पर विश्वास न होवे स्वयं इस का अर्क पीकर परीक्षा करलें।

इसी प्रकार की अनेक निरर्थक बातें इन ऐतिहासिक पुस्तकों में भरी पड़ी हैं जिन से यह सिद्ध करने की चेष्टा की गई है कि ये लोग लिखना नहीं जानते थे, विधवा स्त्रियें अपना विवाह कर लेती थीं* मद्य, मांस के भक्षण से इन्हें कोई परहेज़ न था, असभ्य पुरुषों कीसी बनी हुई गाड़ियों में चढ़ते थे और जङ्गली भीलों की तरह तीर कमान रखते थे। साधारणतया इनकी सभ्यता आज कल के ग्रामीण पुरुषों से कुछ विशेष नहीं थी।

आर्यावर्त्त की प्राचीन सभ्यता—

आर्यावर्त्त की प्राचीन सभ्यता का वर्णन करने के लिये उसके इतिहास का प्रश्न फिर हमारे सम्मुख उपस्थित हो आता है। यह सत्य है कि हम किसी प्राचीन इतिहास के मिले विना इस की सभ्यता का साङ्गोपाङ्ग चित्र (फ़ोटो) नहीं उतार सके परन्तु क्या यह सम्भव है कि जिस जाति ने सृष्टि संवत की बड़े यत्न के साथ रक्षा की वह अनेक इतिहास, विज्ञान और कला कौशलके ग्रन्थ नष्ट होते समय हाथ पर रक्खे बैठी रही होगी। इस समय जङ्गलों में पाषाणों से दबी हुई अनेक ऐसी पुस्तकें उपलब्ध हुई हैं कि जिन के अपूर्व विषयों को देख कर आज कल के विद्वान् पुरुष भी चकित हो जाते हैं। काग़ज़ भी उन पुस्तकों का ऐसा है कि वह पानी में भी नहीं गलता। इससे अनुमान होता है कि जब पुस्तक नष्ट किये गये होंगे तो अनेक अलभ्य पुस्तकों को आर्यों ने बड़े यत्न से भूमि में गाढ़ दिया होगा इनके अतिरिक्त बहुत से अमूल्य पुस्तक मूर्ख-ब्राह्मण सन्तानों को आर्थिक प्रलोभ देकर अनेक यूरोप के विद्वान् अपने देशों को उड़ा लेगये हैं जिन में से बहुत सौं का तो पता ही नहीं चलता और बहुत से फ्रांस, लण्डन और जर्मन के पुस्तकालयों की शोभा बढ़ा रहे हैं। यद्यपि मूर्ख आदमियों के पास अब भी यत्र तत्र बहुत से ग्रन्थ विद्यमान हैं परन्तु विना यथेष्ट धन ख़र्च किये उन का मिलना असम्भव है। निदान प्राचीन ग्रन्थों का संग्रह करना एक परिश्रमसाध्य

* विधवा विवाह वैदिक सिद्धान्तों के विरुद्ध है और आर्यों ने इसे कभी विहित नहीं माना धर्मशास्त्र में लिखा है कि:—न दत्वा कस्य चित्कन्यां पुनर्दद्याद्विचक्षण। दत्वा पुनः प्रयच्छाद्धि प्राप्नोति पुरुषानृतम्॥ मनु० ९। ७१॥ यदि किसी को कन्या देकर पुनः उस के मरने पर जो दूसरे को दान करता है वह असत्य बोलने के दोष को प्राप्त होता है। द्विज स्त्री, पुरुष दूसरा विवाह करते हीं शूद्रत्व को प्राप्त हो जाते हैं। मृत पति और पत्नीक स्त्री पुरुषों को सन्तान की इच्छा होने पर धर्मशास्त्र में नियोग का विधान किया गया है।

कार्य है और इस में बहुत सा अर्थ और समय लगाने की आवश्यक्ता है परन्तु जब तक आर्यों की सभ्यता का कोई इतिहास न मिले अवशिष्ट चिह्नों से ही हमें अपना प्रयोजन सिद्ध करना उचित है। अब हम उन में से भी केवल आर्यवर्णमाला की ही अन्य वर्णमालाओं से तुलना कर के फिर अन्य लोगों की साक्षियें प्रस्तुत करेंगे:—

लिखना—इस समय संसार में जितनी वर्णमालायें प्रचलित हैं यदि देवनागरी के साथ उनकी तुलना करते हैं तो हमें इस से ही आर्यों के अगाध-बुद्धि-वैभव का परिचय मिलता है और यह मानना पड़ता है कि उन्होंने समस्त विद्याओं को इसी प्रकार उन्नति की पराकाष्ठा को पहुंचा दिया था। (प्रथम) तो इस वर्णमालामें स्वर सब एक जगह और व्यञ्जन दूसरे स्थान में रक्खे गये हैं जैसा कि अरबी, फ़ारसी वा अंग्रेज़ी की वर्णमालाओं में नहीं है यथा (अलिफ़, बे) वा (ए, बी)। (द्वितीय)एक स्थानीय सब व्यञ्जन एक ही स्थान में पाये जाते हैं यथा– "क, ख, ग, घ, ङ" इनका कण्ठ स्थान है और एकही जगह रक्खे गये हैं परन्तु फ़ारसी आदि में यह बात भी लक्ष्य में नहीं रक्खी गई यथा 'बे' का और 'मीम' का ओष्ठ स्थान है परन्तु २९ अक्षर के पश्चात् बे से मीम आया है इसी प्रकार अंग्रेज़ी में "के" के इधर उधर जो कण्ठस्थानी है 'जे' और 'ऐल' आये हैं जिन में से पहला तालुस्थानीय और दूसरा दन्तस्थानीय है। (तृतीय) उन वर्णों में कोई निरर्थक वर्ण न हो और न कोई छोड़ा ही गया हो। नागरी अक्षरमाला में अ, कवर्ग (क, ख, ग, घ, ङ) और ह का कण्ठस्थान है; इसी प्रकार इ, चवर्ग, य और श का तालु; ऋ, टवर्ग, र, ष का मूर्द्धा; ऌ, तवर्ग, ल और स के दन्त ओष्ठ स्थान हैं। कोई मनुष्य आज तक इन स्थानों से दूसरे अक्षर उत्पन्न नहीं कर सका और न कोई यह ही सिद्ध करसका है कि इन में से अमुक अक्षर अमुक स्थान से उत्पन्न नहीं होता वा अमुक उच्चारण का ठीक २ काम नहीं दे सका। अब फ़ारसी और अंग्रेज़ी अक्षरों की लीला सुनियेः-कण्ठ से ख, घ, ङ यह तीन अक्षर और उत्पन्न होते हैं परन्तु उपर्युक्त दोनों वर्णमालाओं में जाल डाल दीजिये इन का पता न मिलेगा। इसी प्रकार छ, ज, झ, ञ, ठ, ढ, ण, थ, ध, फ, भ, व, ष, त्र, की भी व्यवस्था समझ लीजि-

येगा। सीन, सेख्वाद, ते, तोय आदि अक्षर फ़ारसी में और वी, डबल्यू आदि अंग्रेज़ी में निरर्थक ही आये हैं। यही कारण है कि आर्य्यलोग अरबी, फ़ारसी, अंग्रेज़ी आदि भाषाओं के कठिन से कठिन शब्दों का उन भाषाओं के आजन्म बोलने वालों की तरह उच्चारण करसक्ते हैं परन्तु सभ्यताभिमानी अंग्रेज़ लोग अपनी अपूर्ण वर्णमाला होने के कारण ही आर्य्यभाषा का शुद्ध उच्चारण नहीं करसके और मुसलमान लोग जो इस देश के बहुकाल से निवासी बन गये हैं आर्यों के सह्वास से भी उन्हें अब तक ब्राह्मण, क्षत्रिय, त्र्यम्बक और ज्ञान आदि शब्दों का उच्चारण ठीक २ नहीं आया। (चतुर्थ) यह बात होनी चाहिये कि जो लिखाजावे वही पढ़ाजावे यथा नसीरुलदीन लिखते और नसीरुद्दीन पढ़ते हैं इसी प्रकार अंग्रेज़ों में थ्रो (through) लैफ़्टिनेएट (Lieutenant) आदि की दशा समझिये कि जिन के स्मरणमात्र से ही रोमाञ्च होता है। (पञ्चम) बात यह होनी चाहिये कि छोटे बालक भी उन शब्दों को सुगमता से सीख लें इसलिये ऋषियों ने एक स्थानी क, ख, ग, घ, ङ आदि वर्णों में पहिले तीसरे और पांचवें वर्ण अर्थात् क, ग, ङ, च, ज, ञ आदि अल्पप्राण अर्थात् बोलने मृदु और दूसरे चौथे ख, घ, छ, झ आदि महाप्राण अर्थात् कठोर ; उच्चारण की सुगमता के लिये रक्खे हैं यदि इस के विरुद्ध इधर उधर ये वर्ण कर दिये जावें तो कितनी कठिनता होगी परन्तु फ़ारसी अंग्रेज़ी आदि वर्णमालाओंमें जोअल्प बुद्धि मनुष्योंकी बनाई हुईहै इनबातों परध्यान नहीं रक्खा गया है और इसी लिये छोटे २ बच्चों को इन के सीखने में बड़ी कठिनता पड़ती है। देवनागरी अक्षर भी अधिकांश गोल रक्खे गये हैं क्योंकि गोल अक्षर अति शीघ्रता से लिखे जाते हैं कहां तक लिखें देवनागरी वर्णमाला के एक २ अक्षर के भीतर विज्ञान (Science) भरी हुई है और उन सब बातों पर विचार करने के लिये यहां स्थान नहीं है अतएव इस विषय को यहीं समाप्त करके अब कुछ भारत की सभ्यतासूचक सम्मतियों का उल्लेख करते हैं।

१भाषा—सर विलियम जौन्स साहब कहते हैं कि संस्कृत की बनावट अत्यन्त अद्भुत है यह यूनानी से बढ़कर परिपूर्ण, ल्यटिन से बढ़ कर विशद और दोनों की अपेक्षा ललित और सुमधुर है। (देखो साइंस आव दी लैंग्वेज पृष्ठ १२५)

२वैद्यक—मिश्र व यूनान वाले जिन्होंने सम्पूर्ण फरंगिस्तानको आदमी बनाया अपने दो बड़े २ वैद्योंके विषयमें लिखतेहैं कि वे आर्यावर्त्त से विद्योपार्जन करके आये थे। और बग़दाद के बड़े खलीफ़ा मामूं ने भी यहां से वैद्य बुलवाये थे और उन्हीं की औषधि सेवन करता था (देखो भूगोल हस्तामलक पृष्ठ ६२ व ६४)

३शालाक्य तन्त्र—(सर्जरी)—आनरेबिल इलफ़िनेस्टन साहब बहादुर गवर्नर बम्बई से कहते हैं कि "शालाक्य तन्त्र (चीर फाड़ की विद्या) में जो आर्योंको परिज्ञान था वह भी ऐसा ही आश्चर्य्यप्रद है जैसा कि रसायन-विद्या का। निदान पथरी निकालनी, आंखें बनानी, गर्भ से बच्चा निकालना यह सब उनके यहां प्रचलित था १२५ सवासौ से अधिक शालाक्य-यन्त्र उन के पास उपस्थित थे, चेचक में टीका लगाना भी उनमें चिरकाल से प्रचलित था। (देखो इलफ़िनेस्टन साहब का बनाया हुआ भारत का इतिहास)

४गान विद्या—सर विलियम जौन्स और पैट्रिन्स साहब वर्णन करते हैं कि आर्योंमें गानविद्या अति क्रम और सभ्यता पूर्वक परिपूर्ण है। उनके यहां ८४ रागनियां हैं जिनमेंसे ३६ रागनियां साधारणतया प्रचलित हैं। और प्रत्येक के ताल स्वर पृथक् २ हैं जो अन्तःकरण के मुख्य २ भावों को आह्लादित करने में पृथक् २ प्रभाव रखती हैं। (देखो मख़ज़न-उल-अलूम जि० ७ नं० ११)

५—शिल्प क्रिया (इंजीनियरी)—आर्य्य लोग शिल्प कर्म के ज्ञाता थे, जलयान (जहाज़) बनाना जानते थे (साइन्स आफ़ दी लैंग्वेज सफ़हा २७३)

६हस्तक्रिया—आर्य्यजाति लोहार के काम और दरूदगरी के गुण से अभिज्ञ थी यह लोग, घड़ी, पियाला, तलवार, कवच आदि सब बनाना जानते थे (हिस्ट्री मेडिशन सि० वाइज़ साहब पृष्ठ १२)

७धर्मशास्त्र—मिस्टर विलियम जौन्स साहब बहादुर कहतेहैं कि यह मनुस्मृति किसी समय यूनान और मिश्र देश तक प्रचरित थी और इसके अनुसार उस देशके निवासियों का व्यवहार चलता था। (देखो मानवधर्मसार राजाशिवप्रसाद कृत सन् १८८१ ई०)

८ज्योतिष-सर विलियम जौन्स साहब कहते हैं कि नक्षत्रविद्या

का विभाग यूनानी और अरबी नहीं जानते थे परन्तु भारतवर्ष में वह चिरकाल से विद्यमान थी (देखो हिस्ट्री आफ़ सिडीशन पृ०२६)

९अंक गणित--(अ)एल०सी० फ़ाडी साहब अरब देशके एक यात्री लिखते हैं कि अंक गणित (इल्म हिन्दसा) किसी देश के मनुष्य नहीं जानते थे परन्तु केवल आर्य्य लोग जानते थे (देखो मुफ़ीदुल-हयात पृष्ठ १)।

(क)मई सन् १८८१ ई०में मौज़े बख़्शअली परगना यूसुफ़राय जिला पेशावरसे एक केप्टनको एक प्राचीन मन्दिर खोदते समय उस स्थान की पाषाणशिलाओं से दबी एक ऐसी पुस्तक मिलीहै जो किसी वृक्ष के पत्रों पर लिखी हुई थी। इसके विषय में डा० आरनबली साहब ने एक पत्र प्रकाशित किया जो वायना की पूर्वीय कांग्रेस में पढ़ा गया उस पत्र का आशय यह है कि इस का एक भाग बहुत कुछ नष्ट हो गया है। इस समय इसके सुरक्षित पत्र ७०के लगभग हैं। ग्रन्थ और उसके रचिता का नाम नहीं मिलता। इस में केवल गणित का वर्णन है। प्रश्नोंके समाधान करने की रीति ऐसी सुगम है कि सोचने की कठिनता नहीं पड़ती और उत्तर बहुत शीघ्र प्राप्त होता है। इस के नियम सुगम और पद्य में हैं परन्तु भाष्य गद्य में है । डाक्टर ह्वार्नबली की यह सम्मति बहुत ठीक है कि हिन्दुओंने गणित विद्या किसीसे नहीं सीखी किन्तु स्वयं इसका आविष्कार किया है। इत्यादि। इत्यादि (देखो कोहनूर १ मई सन् ८८ ई०)

१०वीज गणित--मैक्समूलर साहब कहते हैं कि ख़लीफ़ा मामूं के समय में मुहम्मद बिन मूसा ने संस्कृत से वीजगणित (Algebra) का तथा अलबरूनी ने सांख्यशास्त्र तथा योग शास्त्र का अरबी में अनुवाद किया। (देखो साइंस आफ़ लैंग्वेज पृष्ठ १६५)

११रेखा गणित-डा० डिवो साहब प्रिन्सपिल बनारस कालिजने यह सिद्ध किया है कि आर्योंको वैदिक समयमें रेखा गणितकी विद्या विदित थी (देखो रिसाला संस्कृत की फ़ज़ीलत)

११ तार—कर्नल अल्काट साहब कहते हैं कि "निश्चय आर्यों के पास तार था जिसके द्वारा बड़ी दूर से समाचार आते जाते थे उसमें खम्भे गाढ़ने, तार लगाने और तूतिया आदि पदार्थ रखने की आव-

श्यकता नहीं होती थी और अब भी उसकी सन्तति में वह ऋषि विद्यमानहैं। वह क्या है? योग विद्या। (भारत त्रिकालदशा पृष्ठ६)

१२व्योम यान—फिर कर्नल साहब कहते हैं कि आर्य्य लोग वह विद्या भी जानते थे जिस के लिये यूरोप वाले बड़ा उद्योग कर रहे हैं हैं अर्थात् विमान। आर्यों को वायु द्वारा आकाश में चलने की शक्ति थी वे केवल आकाश में चलने की शक्ति ही नहीं रखते थे वरञ्च वहीं युद्ध भी किया करते थे (भारत त्रिकालदशा पृष्ठ ६ व ७)

१३यन्त्र और कलायें—फिर कर्नल साहब कहते हैं कि "उस समय सूक्ष्म-दर्शक-यन्त्र(खुर्दबीन) और दूर-दर्शक-यन्त्र (दूरबीन), धर्म घड़ियां, जेबी घड़ियां और यन्त्रों के द्वारा बोलने वाले कृत्रिम पशु आदि विद्यमान थे। आर्यों में अस्त्रविद्या के ऐसे २ पूर्ण ज्ञाता और प्रयोगकर्त्ता लोग थे कि वे विषयुक्त वायु से शत्रु सेना को अचेत कर के और वायु में भयङ्कर शब्द उत्पन्न करके उन्हें विनष्ट कर देते थे और आकाश में भयावह आकृतियें बना कर विरोधियों को भयभीत और विस्मित करते थे। इस विद्या का नाम तक भी इस समय के लोग नहीं जानते (भारत त्रि०द० पृष्ठ ६। ७)

१४—वनस्पति विद्या—कश्मीरमें वनस्पति के विषय का तीन भागों में संस्कृत भाषा का ऐसा वृहत् ग्रन्थ मिला है कि कदाचित् ही इस से बड़ी कोई पुस्तक दृष्टि पड़ी होगी यह अति प्राचीन पुस्तक है। अख़बार-उलसदीक़ पृष्ठ ७ ता० २५। ११। १८८७।

१५ रेल—महाशय काशीराम जी अहलकार ज़ि० पेशावर ने ता० २५ अगस्त सन् १८८९ ई० को एक ख़त स्वर्गवासी पं० लेखराम जी आर्य्य-पथिक को निम्न आशय का लिखा था "दिसम्बर सन् १८८२ का यह वृत्तान्त है जब कि मैं तहसील सवाबी में नौकर था उस समय एक साहब बहादुर पुरानी इमारतों के देखने और प्राचीन समय के वृत्तान्त ज्ञात करने को आये देख भाल करने के पश्चात् उन्होंने मिरज़ाअमीरुद्दीन के सम्मुख कहा था कि रेल आदि कारीगरियों को लोग इस समय देख कर समझते हैं कि इसी समय इन का आविष्कार हुआ है परन्तु यह उनका भ्रम है क्योंकि प्राचीन समय में इस से बढ़कर आर्यावर्त्त में मौजूद थीं यह समस्त वृत्तान्त उन पत्थरों पर अङ्कित है जो

कि मौज़े शहबाज़गढ़ ज़ि० पेशावर में इस समय भी विद्यमान हैं और ऐसे पत्थर हैदराबाद, लङ्का आदि स्थानों से भी मिले हैं। इस समय जिस प्रकार विज्ञापन वा आज्ञापत्र काग़ज़ों पर लिखे जाते हैं उस समय में पत्थरों पर अङ्कित करा कर उन्हें राज्य के विशेष स्थानों में खड़ा करा दिया जाता था। निदान शहबाज़पुर के पत्थर पर यह विज्ञापन मुद्रित है जिसे एक राजा ने जारी किया था जिसे कि चार सहस्रवर्ष के लगभग समय बीता उस में नौकरों को राजा की ओर से निम्न चार आज्ञायें दी गई हैं:—

(१) धुयें गाड़ी में लकड़ी न जलाई जावे और इस के स्थान में पत्थर का कोयला जलाना चाहिये।

(२) समस्त राज्य में मनुष्यों के लिये तो औषधालय विद्यमान हैं परन्तु पशुओं के लिये कोई चिकित्सालय नहीं है अतः शीघ्र खुलने चाहियें।

(३) यद्यपि यात्रियों के ठहरने को धर्मशालायें विद्यमान हैं परन्तु अब इतनी विशेषता होनी चाहिये कि जो पथिक किसी वस्तु को वहां से पसन्द कर के ले जाना चाहे मेरे नौकर उसे तत्काल देदें।

(४) राजमार्गों (सड़कों) पर दोनों ओर अच्छे २ फलों के सघन वृक्ष लगाये जावें जिन से यात्रियों को पूर्णतया सुख पहुंचे।

१६–भूगोल–अमेरिका के विषय में प्रसिद्ध है कि कोलम्बस के ज्ञात करने से पूर्व वह किसी को मालूम नहीं था परन्तु मि० ए० पी० वाइनिंग साहब लिखते हैं कि:-"अमेरिका के पुराने मत और रीतियों का हिन्दुओं से बहुत कुछ सादृश्य होने पर मालूम होता है कि हिन्दु लोग अमेरिका गये थे या अमेरिका वालों से उनका किसी प्रकार का सम्बन्ध हुआ था। यथा विवाह में अग्नि के चहुंओर फेरे लेना। पांचवी शताब्दि में अमेरिका में एक सम्प्रदाय बौद्ध संन्यासियों का भी गया था" (यह वृत्तान्त चीनके राजकीय इतिहासमें लिखा हुआ है और वाइनिंगसाहब ने अब उस का अंग्रेज़ी में अनुवाद कर दिया है।)

सदाचार–मेगस्थनीज़ (Megasthenes) यूनानी इतिहास वेत्ता जो मसीह से ३०६ वर्ष पूर्व राजा चन्द्रगुप्त के दर्बार में राजदूत की भांति नियुक्त था लिखता है कि:–" आर्यावर्त्त में दासता (गुलामी) का नाम तक न था, मनुष्य बड़े वीर, धर्मात्मा, सत्यवादी, शुद्धाचारी

और परिश्रमी थे। कृषि और कला कौशल में सम्यक् व्युत्पन्न थे। यहां की स्त्रियां अत्यन्त सती, साध्वी और पवित्राचरणी होती थीं। राजकीय प्रबन्ध मनुस्मृतिके अनुसार होता था। वैश्य अर्थात् कृषक युद्ध और अन्य राजकीय सेवाओंसे स्वतन्त्र थे (देखो तवारीख़ हिन्द)

वास्तव में छल, कपट, चोरी आदि दुर्व्यसन मुसलमानों ने ही आकर इस देश में फैलाये हैं और पहाड़ी देशों में जहां कि यह लोग नहीं पहुंचे अब तक ऐसे मनुष्य पाये जाते हैं जो उपर्युक्त दुर्गुणों से सर्वथा रहित हैं।

स्त्रियों का मान्य—आर्य जाति की स्त्रियों के मध्य मुहम्मदियों (मुसलमानों) के समयसे पूर्व किसी प्रकार का परदा न था। क्योंकि मुहम्मदियों के भय से स्त्रियां चल फिर नहीं सक्ती थीं इसीलिये हिन्दुओंने इसे स्वीकार किया था। स्त्रियां सुशिक्षिता होती थीं और राज्य-प्रबन्ध में पूर्ण अभ्यास रखती थीं। संग्राम-भूमि में भी युद्धार्थ जाती थीं स्त्रियों की दशा तो मुहम्मदियों के समय से ही बिगड़ना आरम्भ हुई जिन्होंने स्त्रियों को लौंडी, गुलाम और घास, पात की तरह समझ लिया निदान उनकी कुरान मजीदके सूरत इनशामें लिखा है कि "औरतें तुम्हारी खेती हैं" (नूरअफ़शां २६ जनवरी सन् १८६९ई०)

यह तो संक्षेपसे विदेशी और विधर्मी पुरुषों की सम्मतियें हमने उद्धृत की हैं जिन्होंने न मालूम क्या २ इस देशके गुरुता-सूचक चिह्नोंको देखकर उपर्युक्त स्वसम्मतियें प्रकटकी होंगी अब हम प्राचीन पुस्तकों से जो इस समय पाई जाती हैं भारतीय सन्तानों के बुद्धि वैभव, हस्तकला और विज्ञान में पूर्ण दक्ष होने के कुछ प्रमाण उद्धृत करते हैं:—

१ शत्रुञ्जय (शतरंज) का खेल—राक्षस-राज रावण को युद्ध-क्रीड़ा का बड़ा भारी व्यसन था इस लिये उसकी परम चतुर, नीतिज्ञ और विदुषी स्त्री मन्दोदरी ने जो तामिल के राजा की पुत्री थी यह खेल इस लिये निकाला था जिस से उसका चित्त बहला रहे और व्यर्थ नर-संहार न हो। शतरंज शब्द किसी भाषा का नहीं है और यह संस्कृत के शत्रुञ्जय शब्द से बिगड़ कर बना है जिसके अर्थ शत्रु (दुश्मनों) पर जय (फ़तह) पाने के हैं।

२-रामायण के समय में कलाकौशल इतनी उन्नति को पहुंच गई थी कि रामचन्द्र के बनावटी शिर और धनुष के देख कर सरल-हृदया सीता ही विक्षिप्त नहीं होगई थीं वरन् मारीच के बनाये हुए मृग और मेघनाद् को कृत्रिम सीता शिर काटते हुए देख कर रामचन्द्र जैसे बुद्धिमान् और नीतिज्ञ पुरुष भी मोहित और शोकित होगये थे।

३-महाभारत के समय में भी शिल्प विद्या इसी प्रकार उन्नति की पराकाष्ठा को पहुंची हुई थी; महाराज युधिष्ठिर के समय में एक ऐसा मकान बनाया गया था जिसे देख राजपुत्र दुर्योधन को भी भ्रम उत्पन्न हुआ था और उसे सूखे स्थान में पानी और जहां जल था वहां स्थल दृष्टि आया था।

४-विज्ञान में भी ऐसी उन्नति हो चुकी थी कि विराटराज की गौवें हरते समय अकेले अर्जुन ने ही कौरवों की सेना को मूर्छित कर दिया था और महाभारत युद्ध में श्रीकृष्ण ने सूर्य को अन्तरिक्ष में ऐसे भौतिक पदार्थ फैला कर आच्छादित कर दिया था जिस से दिन की रात्रि बन गई थी।

कहां तक लिखें प्राचीन समय की अस्त्र विद्या के सामने आज कल की तोप, बन्दूक अकर्मण्य हैं और रेल तथा मोटरकार पुष्पक विमानों के समक्ष लज्जित हो रही हैं। आजकल की बाइसिकल आदि कलायें प्राचीन समय के उन यन्त्रों * की बराबरी नहीं कर सक्ती जिनके द्वारा हनुमान् प्रभृति वानर अन्तरिक्ष में गमन करके सागर पार होजाते थे। जिन लोगों ने महाभारत और मनुस्मृत्यादि ग्रन्थों में दण्ड, शकट, वराह, सूची, पद्म, सर्प, वज्र और चक्र आदि व्यूहों की रचना देखी है वे आज कल की क़वाइद को लड़कों का खेल समझते हैं। निदान उपलब्ध पुस्तकों में भी अनेक प्राचीन सभ्यता के चिह्न शेष मिलते हैं जो मनुष्य इन प्रमाणों के होते हुए भी आर्यों को असभ्य सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं उन्हें स्वार्थी और पक्षपाती ही समझना उचित है।

---

* राजा भोज के समय में भी एक ऐसा कृत्रिम घोड़ा विद्यमान था जो भूमि और अन्तरिक्ष दोनों स्थानों में गमन करता और एक घंटे में २७॥ कोस जाता था (देखो भोज प्रबन्ध)

परमपिता परमात्मा ने मनुष्यों को उनके गुण, कर्म, स्वभावानुसार ४ चार वर्णों में विभक्त किया है जैसा कि वेद के निम्न मन्त्र से प्रकट होगाः—

प्राचीन वैदिक वर्ण व्यवस्था

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्य कृतः
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्या७ शूद्रो अजायत ॥ यजु० ३१।११

इस मन्त्र में परमात्मा ने शरीर के रूपक में वर्णव्यवस्था का उपदेश किया है अर्थात् इस वर्णव्यवस्था रूपी शरीरमें ब्राह्मण शिर, क्षत्रिय बाहू, वैश्य ऊरू (पेट) और शूद्र पैर के तुल्य हैं। जिस प्रकार एक भी शरीरावयव के विना देह निकम्मा है उसी प्रकार वर्णव्यवस्था रूपी शरीर के एक भी अवयव रूपी वर्ण की हीनावस्था होने से शेष तीनों वर्णों की स्थिति में भी आघात पहुंचता है।

अब हम आर्षग्रन्थों के प्रमाण देकर चारों वर्णों के गुण कर्म स्वभाव वर्णन करते हैं।

शमो दमस्तपः शौच क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥ भ० गी० १८।४२

अर्थः—(शमः) मन को बुरे कामों से रोकना (दमः) इन्द्रियों को धर्म में चलाना (तपः) जितेन्द्रिय रहना (शौच) जल से शरीर और धर्मानुष्ठान से आत्मा की शुद्धि करना (क्षान्ति) निन्दा, स्तुति; हर्ष, शोक का त्याग (आर्जव) कोमलता को धारण तथा कुटिलतादि दोषों को छोड़ देना (ज्ञान) वेदादि शास्त्रों को सांगोपांग पढ़ना (विज्ञान) पृथिवी से लेकर ईश्वर पर्यन्त पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करके अनेक कला, यन्त्र और अस्त्र आदि बनाना और ईश्वर का साक्षात् करना (आस्तिक्य) वेद, ईश्वर, मुक्ति, पूर्व जन्म आदि बातों को सत्य मानना यह कर्म और गुण ब्राह्मणवर्णस्थ मनुष्यों में होने उचित हैं।

इसी प्रकार धर्मशास्त्र में ब्राह्मणादि वर्णों के निम्न प्रकार कर्म वर्णन किये गये हैं अर्थात् (१) पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना और दान लेना यह छै कर्म ब्राह्मणों के बतलाये हैं। परन्तु मनुस्मृति में ही लिखा है कि "प्रतिग्रहः प्रत्यवरः" अर्थात् दान

लेना नीच कर्म है इसलिये प्राचीन ब्राह्मणों की अत्यल्प संख्या ऐसा करती थी।

२—प्रजा का रक्षण करना, दान देना, यज्ञ करना, पढ़ना और विषयों का परित्याग करना यह पांच कर्म क्षत्रियों के बतलाये हैं।

३—पशुरक्षा, दान, यज्ञ करना, पढ़ना, व्यापार करना, व्याज लेना, और खेती करना ये सात कर्म वैश्यों के वर्णन किये हैं।

४—और चारों वर्णों की सेवा करके अपना निर्वाह करना यह कर्म शूद्रों का बतलाया।

प्राचीन समय की वर्णव्यवस्था आज कल की भांति अपूर्ण दशा को प्राप्त नहीं थी और यह वर्णव्यवस्था जन्म से नहीं किन्तु अपने कर्मों से मानी जाती थी धर्मशास्त्र में अपने कर्मों से पतित होने पर ब्राह्मणादि वर्णों को शूद्र बनाने तथा श्रेष्ठ करने पर शूद्रों को उच्च वर्ण में सम्मिलित करने का आदेश वर्णित है यथाः—

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च॥ मनु० १०। ६६॥

अर्थात् शूद्रकुल में उत्पन्न होकर शेष तीनों वर्णों में जिस २ वर्ण के तुल्य गुण कर्म स्वभाव हों वह उसी वर्ण का होजाय इसी प्रकार ब्राह्मणादि वर्ण यदि शूद्र के तुल्य आचार करें तो वे शूद्र बनादिये जायं।

यही भय था कि चारों वर्ण अपने २ कर्त्तव्य पालन करने में कदापि शिथिल-प्रयत्न नहीं होते थे। उस समय में ब्राह्मणों के ब्राह्मण क्षत्रियों के क्षत्रिय और वैश्यों के वैश्य ही सन्तान विशेष कर उत्पन्न होती थीं। क्योंकि गर्भाधान से लेकर वेदारम्भ काल के समय तक के एक ही प्रकार के संस्कारों का बालकों के चित्त पर कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य ही उत्पन्न होजाता है। परन्तु प्राचीन काल में जहां ब्राह्मणादि वर्णों को कर्त्तव्य भ्रष्ट होते ही तत्काल पतित कर दिया जाता था वहां नीच से नीच कुलोत्पन्न ब्राह्मणादि वर्णोचित कर्त्तव्यों का पालन करने योग्य पुरुषों को तत्वर्णस्थ मानने में कभी पक्षपात से काम नहीं लिया जैसा कि निम्न प्रमाणों से विदित होगाः—

गणिकागर्भसम्भूतो वासिष्ठश्च महामुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तत्र कारणम्॥ भविष्यपु०

अर्थ—अर्थात् गणिका के गर्भ से वसिष्ठ जी की उत्पत्ति हुई थी परन्तु वह तप से ब्राह्मण होगये जिसका कारण संस्कार ही हैं।

जातो व्यासस्तु कैवर्त्यां श्वपाक्यस्तु पराशरः।
बहवान्येपि विप्रत्वं प्राप्तये पूर्वमद्विजः॥ महाभारत वनपर्व

अर्थः—व्यास जी कैवर्त्या (मल्लाह की पुत्री) से और अन्त्यज कन्या से पराशर ऋषि उत्पन्न हुए थे और भी बहुत से पुरुष जो जन्म से ब्राह्मण नहीं थे परन्तु तप से ब्राह्मण होगये।

महर्षि वाल्मीकि जी व्याध और विश्वामित्र जो क्षत्रिय थे परन्तु तप से ब्राह्मण बने। इसी प्रकार छान्दोग्य उपनिषद् में जाबाल ऋषि की कथा लिखी है कि जब वे पढ़ने योग्य तो अपनी माता से कहने लगे कि मैं ब्रह्मचर्य्याश्रम ग्रहण करना चाहता हूं कृपया मुझे बताइये कि मेरा गोत्र क्या है उनकी माता ने उत्तर दिया कि पुत्र! मैंने बहुत से पतियों से सम्बन्ध किया है मुझे ज्ञात नहीं कि तू किस से उत्पन्न हुआ है; मेरा नाम जबाला है तेरा जाबाल इसलिये यही आचार्य को बतला देना। निदान आचार्य से इन्होंने यही आकर कह दिया और उनकी यह सत्यवादिता देख कर आचार्य ने तत्काल उन्हें विप्र-कोटि में सम्मिलित कर लिया।

असुर शब्द की मीमांसा और मांसाहारका खंडन

हम बतला चुकेहैं कि वेद भगवान् मनुष्योंके चार विभाग करके परस्पर मिलकर उन्हें काम करने की शिक्षा और आज्ञा प्रदान करते हैं और बतलाते हैं कि हे मनुष्यो! यदि तुम संसारमें मिलकर काम न करो तो किसी पदार्थ को प्राप्त नहीं कर सकते। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यह तीनों वर्ण विद्वान् होने के कारण आर्य कहलाते हैं और चौथा शूद्र वर्ण यद्यपि वेदविरुद्ध कर्म न करने के कारण चारों वर्णोंके अन्तर्गत माना गया है परन्तु विद्यादि गुणों से हीन होनेके कारण उसका आर्य नाम से सम्बोधन नहीं किया जाता। इस से सिद्ध है कि शूद्र वेदानुकूल चल कर दास कर्म करके अपने शरीर का पालन करते हैं परन्तु वेदविरुद्ध, मांस भक्षण आदि दुष्कर्म कदापि नहीं कर सकते। वेदविरुद्ध कर्म करने वाले मनुष्यों को शास्त्रों में मनुष्य कोटि से

गिरा दिया गया है और म्लेच्छ, दस्यु, असुर, राक्षस, पिशाच आदि नामोंसे पुकारा गयाहै जैसा कि मनु के निम्न श्लोकसे विदित होगा-

मुख बाहूरुपज्जानां या लोके जातयो वहिः।
म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृतः॥ १०। ४५॥

अर्थात् जो ब्राह्मणादि चारों वर्ण अनाचारसे भ्रष्ट होगये हैं इस समय चाहे वे म्लेच्छ-भाषा बोलतेहैं चाहे आर्य-भाषा; सब दस्यु हैं।

यद्यपि द्यूत, चोरी, मद्यपान, व्यभिचार और मांस भक्षण आदि सबही अनाचार और निषिद्ध कर्महैं परन्तु सम्प्रति जिन मनुष्योंको हम असुर कोटिमें मानते हैं वे प्रागुक्त ४ दुर्गुणोंको तो बुरा समझतेहैं परन्तु अन्तिम मांस भक्षण को वे निन्दनीय कर्मों की कोटि में नहीं गिनते इसलिये इसीके विषय में हमें कुछ कथन करना है।

इस समय का असुर-समूह दो भागों में विभक्त है। एक दल का कथन है कि संसार में अपनी शक्ति बढ़ाने के लिये मांस का भक्षण करना अत्यावश्यक है क्योंकि आमिष-भोजन किये विना शरीर पुष्ट नहीं होता और न शूर, वीरतादि गुण ही आसकतेहैं दूसरा पक्ष वेद शास्त्रों को बदनाम करके इसका भक्षण विहित सिद्ध करता है और यह उन्हीं आर्यपुरुषों की अयोग्य (नालाइक़) सन्तान है जो "मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्" वेद मन्त्रका सतत पाठ किया करते थे। अब हम प्रथम यह सिद्ध करते हैं कि मांस भक्षण करनेसे शूर, वीरतादि गुण उत्पन्न नहीं होते वरञ्च इससे स्वास्थ्य को उलटी हानि पहुंचती है।

प्रत्येक मनुष्य को भोजन करने की इसलिये आवश्यकता पड़ती है कि शरीर से जो शिथिल परमाणु निकलते रहते रहते हैं उन के स्थान को नवीन परमाणुओं से भरा जावे। हमारा भोज्य पदार्थ साधारणतया ऐसा होना उचित है कि उस में शरीर को पुष्ट करने वाले, अंश अधिक हों एवं वह शीघ्र ही पचने वाला हो और सड़ने वाला न हो। रसायन-शास्त्र के ज्ञाताओंने जो नक्शा मांस और वनस्पतिक पदार्थोंकी परीक्षा करके तय्यार किया है उसे हम उद्धृत

करते हैं। इस चित्र से विदित होगा कि मांस की अपेक्षा वानस्पतिक पदार्थों में गर्मी देने वाले अंश अधिक विद्यमान हैं।

संख्या	खाद्य वस्तु	मांस बढ़ाने वाले अंश	गर्मी देने वाले अंश	खनिज (मादनी) पदार्थों के अंश	जल (पानी) और मेद(चरबी) के अंश	विशेष
१	मक्खन और घी	०	१००	०	०	जिन मनुष्यों को परीक्षा करने की अभिलाषा हो वह स्वयं अग्नि प्रज्वलित करके घृत, अन्न तथा मांस की आहुति देकर परीक्षा कर लेवें उचित है कि अग्नि किन पदार्थों से प्रबल होती है—
२	दूध	१५	२५	३	५७	
३	चावल	७	७८	१	१४	
४	आलू	२	२३	१	७४	
५	गेहूं	१३	७२	२	१३	
६	ज्वार	९	७४	१	१६	
७	बाजरा	१०	७३	२	१५	
८	कंगनी	१२	७०	१	१७	
९	यव (जौ)	११	७२	२	१५	
१०	मत्स्य (मछली)	१५	७	१	७७	
११	रंधा (पका) हुआ मांस	२२	१४	१	६३	
१२	चने की दाल	१९	६२	३	१६	
१३	अरहर की दाल	२४	५९	२	१५	
१४	मटर की दाल	२६	५६	२	१६	
१५	मसूर की दाल	२४	५९	२	१५	
१६	लोबिया	२३	५९	४	१४	
१७	उड़द	२२	६२	३	१३	
१८	हरी मटर	७	३६	२	५५	
१९	लौंग	२३	५९	३	१४	
२०	साबूदाना व अरारोट	४	८२	१	१३	

प्रत्येक मनुष्य के भीतर जठराग्नि की एक भट्टी जल रही है जो रस से रक्तादि धातुओं को बनाती है और इसी अग्नि से जला हुआ लगभग आधपाव के कोयला प्रत्येक मनुष्य मलादि के साथ बाहर निकालता है यह आधुनिक विद्वानों ने निश्चित किया है। अतः यह गर्मी हमारे स्वास्थ्य के लिये अत्यावश्यक है और इस बात को सभी जानते हैं कि स्वस्थ (तन्दुरुस्त) मनुष्य ही बलवान् होता है।

दूसरी बात यह होनी चाहिये कि वह शीघ्र पचने वाला हो अनुभव से ज्ञात हुआ है कि पका चावल १ घण्टे में, उबला दूध दो घण्टे में, आलू ढाई घण्टे में, भेड़ और गोमांस ३ घण्टे में एवं वराह (सूअर) का मांस ३॥ घण्टे में पचता है इस तरह से भी वानस्पतिक आहार ही मनुष्य प्रकृति के अनुकूल ठहरता है।

तीसरी बात यह होनी चाहिये कि वह शीघ्र सड़ने वाला न हो और उस का रस (Chyle) शुद्ध रहे डाक्टर मार्सेट आलीवियर (Marcet) और दूसरे फ़िज़ियालोजिष्ट कहते हैं कि मांस से बना रस तीन, चार दिन में सड़ जाता है परन्तु वनस्पति से बना रस अधिक समय तक नहीं बिगड़ता है।

मनुष्य के नख, दन्त और आमाशय (मेदे) आदि की आकृति देखने से भी वह बन्दर आदि पशुओं की तरह शाकाहारी ही विदित होता है। व्याघ्रादि हिंसक जन्तुओं की तरह मांसाहारी प्रतीत नहीं होता। एक विद्वान् का कथन है कि शाकाहारी और मांसाहारी प्राणियों की यह परीक्षा सब से उत्तम है कि जब मांसाहारी जन्तु पानी पीते हैं तो उन की जिह्वा पानी में थप्पड़ की भांति लगा करती है और निरामिषहारी मनुष्य तथा पश्वादि चूंस कर जलपान करते हैं।

अब हम कुछ प्रमाण उद्धृत करते हैं जिन से विदित होगा कि मांसाहारियों की अपेक्षा निरामिषहारी ही अधिक बलिष्ट होते हैं।

(१) स्मिथ साहब लिखते हैं कि पौलैण्ड और हंग्री देशों के सिपाही पृथ्वी भर में सब से चतुर और बलिष्ट हैं वे रोटी और आलू पर निर्वाह करते हैं (देखो फ्रूट्स ऐण्ड फेयरनेशिया पृष्ठ ५३)

(२) डा० इलफ़िनस्टन साहब लिखते हैं कि ग्रीनलैण्ड के निवासी जो संसार में सब से अधिक आमिषभक्षी हैं वे सब से ठिंगने और डरपोक हैं क्योंकि मांस में हड्डी बनाने वाले अंश नहीं होते इस लिये मांसाहारी ठिंगने रहते हैं।

(३) डा० गदाधरसिंह जी 'चीन में तेरह मास' नामक पुस्तक में लिखते हैं कि बाक्सर युद्ध में भारतीय और जापानी सेना जो मांसाहारी न थीं धूप में भी धावा करती थी परन्तु रूस आदि देशों की फ़ौजें जो विशेषता से मांस भक्षण करती थीं धूप के समय चलने में सर्वथा असमर्थ हो जाती थीं।

(४) भारतवर्ष में चार जातियें अर्थात् काश्मीरी, बङ्गाली, कायस्थ और मदरासी आमिष भक्षी हैं परन्तु ये चारों ही निर्बल और कायर समझे जाते हैं।

(५) पशुओं में मांस भक्षी सिंह सब से बलिष्ट समझा जाता है परन्तु एक खड्ग (गेंडे) से (जो वनस्पति खाता है) दश सिंह भी लड़ने का साहस नहीं रखते।

(६) गोरिल्ला (Gorilla) और (Chimpanze) नामक वन-मानुष जो केवल शाकपात ही खाते हैं इतने बलिष्ट होते हैं कि बन्दूक़ तथा लोहे के बड़े २ लट्ठों को जब वे क्रोध में आते हैं दोनों हाथों से पकड़ कर तोड़ डालते हैं। इसी प्रकार हाथी, घोड़े, बैल आदि पशु जितना शारीरिक परिश्रम करसक्के हैं मांसाहारी उतना नहीं करसक्के क्योंकि उन्हें वास्तव में बलदायक भोजन प्राप्त नहीं होता।

अब हम कुछ वेद शास्त्रों के प्रमाण उद्धृत करते हैं जिन से प्रकट होगा कि आर्य्य लोग इस से कितनी घृणा करते थे।

अश्वं मा हिꣳसी गां माहिꣳसी अविं माहिꣳसीः। माहिꣳसीर्द्विपादं पशुं मयुं पशुं मेधमग्ने जुषस्व इमꣳसाहस्रꣳशतधारं माहिꣳ सीः ॥ यजु० ४२

अर्थात्—घोड़ा, भैंस, गौ, बकरी, भेड़ और दो पाद वाले जीव इन सब को मत मारो।

योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया।
स जीवंश्च मृतश्चैव नकचित्सुखमेधते ॥ मनु० ५। ४५

अर्थ—जो आत्मसुख के लिये जीवों की हिंसा करता है वह इस लोक और परलोक में सुख को प्राप्त नहीं होता।

फलमूलाशनैर्मेध्यैर्मुन्यन्नानां च भोजनैः।
न तत्फलमवाप्नोति यन्मांसपरिवर्जनात् ॥ मनु० ५। ५४

अर्थ—फल, मूल, समा आदि मुनियों के खाने योग्य वस्तुओं से भी वह फल नहीं मिलता है जो नियमपूर्वक मांस न खानेवाले को मिलता है।

मांस भक्षयितामुत्र तस्य मांसमिहाद्म्यहम्।
एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ मनु० ५। ५५

अर्थ—इस लोक में जिस के मांस को मैं खाता हूं परलोक में वह मुझे खायगा पण्डितों ने मांस शब्द का यही अर्थ किया है।

यक्षरक्षः पिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरासवम् ।

तद्ब्राह्मणेन नात्तव्यं देवानामश्नता हविः ॥ मनु० ११ । ९६

अर्थ-मद्य, मांस और सुरा यह यक्ष, राक्षस और पिशाचों के अन्न हैं यह देवताओं की हवि खानेवाले ब्राह्मणों को कदापि न खाने चाहियें।

कामकाराद्विहिंसन्ति बहिर्वेद्यां पशून्नराः ।

सर्वं कर्मस्वहिंसा हि धर्मात्मा मनुरब्रवीत् * ॥ महा० शान्ति०

अर्थ-मांस के लालच से ही मनुष्य वेदि के समीप पशु को मारते हैं मनु * ने तो सर्व कामों में अहिंसा कही है ।

दुष्करं हि रस ज्ञाने मांसस्य परिवर्जनम् ।

चर्तुं व्रतमिदं श्रेष्ठं सर्वप्राण्यभयप्रदम् ॥ महा० अनु० ११५ । १९

अर्थ-जिह्वा के स्वाद के मारे मांस छोड़ना यद्यपि कठिन है परन्तु सब प्राणियों को अभय देने वाले इस व्रत का अवश्य पालन करना चाहिये।

नाहि मांसं तृणात्काष्ठादुपलाद्वापि जायते ।

हत्वा जन्तुं ततो मांसं तस्माद्दोषस्तु भक्षणे ॥ महा० अनु०

अर्थ-तृण, काष्ठ, उपल आदि से मांस नहीं मिलता वरन् जीव-हिंसा से प्राप्त होता है इसलिये इसके भक्षण में बड़ा पातक है।

कहां तक प्रमाण लिखें केवल महाभारत के अनुशासन पर्वमें ही ११४ से लेकर ११६ अध्याय तक में १४५ एक सौ पैंतालीस श्लोक मांस के खण्डन में विद्यमान हैं और मनु ने तो (१) मारने की आज्ञा देने वाला (२) अंग प्रत्यंग काटने वाला, (३) लेने वाला (४) बेचने वाला (५) पकाने वाला (६) परोसने वाला और (७) खाने वाला, इन सब को मारने वाले के समान ही पातकी बतलाया है अतएव स्पष्ट है कि यदि कहीं २ आर्योंके किसी ग्रन्थमें इसका विधान पाया जाता है तो वह मिलावट है अन्यथा आर्य लोगों ने सदा से ही इस से घृणा की है और कभी विहित नहीं माना।

* मनुस्मृति में जहां मांसभक्षण की निन्दाकी है वहां ऐसे श्लोकभी पायेजाते हैं जिन में यज्ञ में पशु हिंसा विहित मानी है "मधुपर्के च यज्ञे च * * * * नान्यत्रेत्यब्रवीन्मनु" मनु० ५ । ४१ ॥ अर्थात् मनु ने मधुपर्क, यज्ञ, पितृ तथा दैवकर्मों में पशु मारने की आज्ञा दी है अन्यत्र नहीं" प्रथम तो यह मनु का वचन नहीं है क्योंकि यदि उन का वचन होता तो वे अपना नाम न लिखते। द्वितीय महाभारत के उपर्युक्त श्लोक से प्रकट है कि उस समय में मनु में ऐसे श्लोक नहीं मिलाये गये थे अन्यथा यह न लिखा होता कि मनु ने सर्व कामों में अहिंसा कही है। निस्सन्देह महाभारत के पश्चात् धूर्त्त वाममार्गियों ने यह श्लोक मनु में मिलाये हैं।

हम लिख चुके हैं कि इस समय पुराणादि ग्रन्थों में जो प्राचीन राज-पुरुषोंके ऐतिहासिक वृत्तान्त और वंशतालिकायें मिलती हैं वे यथातथ्य मानने योग्य नहीं हैं कारण यह है कि जब बौद्ध और जैन प्रभृति नास्तिकों ने अपनी प्राचीनता सिद्ध करने के लिये ऐतिहासिक ग्रन्थों को नष्ट कर दिया तो ब्राह्मणों ने अनेक ऐतिहासिक घटनाओं को जो उन्हें याद थीं या किसी से सुनी सुनाईं लिख कर पुराणों की सृष्टि आरम्भ कर दी। अतएव उन के ऐतिहासिक विषयों में परस्पर बड़ा मत भेद है और वंशावलियें भी एक की दूसरे के साथ नहीं मिलतीं। यह सत्य है कि पुराणों में अनेक अनर्गल और युक्ति शून्य विषय भरे पड़े हैं जैसा कि हम पुराणों की समीक्षा में आगे चल कर वर्णन करेंगे परन्तु आर्यों को यदि अपने प्राचीन इतिहासों की सामग्री कहींसे प्राप्त हो सकती है तो वे १८ से अधिक पुराण ही हैं और उनके ऐतिहासिक विषय उपेक्षा से देखने योग्य कदापि नहीं हैं। अब हम पुराणों के मत भेद विषय में स्वतः कुछ न लिख के टाड साहबके लेख का कुछ अंश उद्धृत करते हैं:-

वर्तमान समयकी उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री से प्राचीन इतिहास का अनुसन्धान करना।

"अधिकतर पुराणों में ऐतिहासिक और भौगोलिक वृत्तान्तका कुछ अंश मिलता है परन्तु भागवत, स्कन्द, अग्नि और भविष्य पुराण ही इन में मुख्य हैं। खेद की अपेक्षा यह सौभाग्य का विषय है कि उनमें दी हुई वंशावलियां परस्पर एक दूसरी के साथ पूर्ण रूप से नहीं मिलतीं उन में प्रत्येक वंश के राजाओं की संख्या भिन्न २ है और नाम भी कहीं २ उलट पुलट गये हैं परन्तु प्रत्येक में मुख्य २ बातें स्पष्ट रूप से एक सी मिलती हैं जिन से यह सिद्ध होता है कि वे भिन्न ग्रन्थकारों के रचे हुए हैं और उन सभों ने किसी एक ही मूलस्रोतसे अपनी सामग्री प्राप्त की है" (देखो टाड्स राजस्थान)

अब हम पुराणों के अन्य विषयों को न छेड़ कर केवल पुराणोंमें लिखी वंशावलियों का ही वर्णन करते हैं।

श्रीमद्भागवत में इक्ष्वाकु से लेकर रामचन्द्र तक सूर्य वंश के ५५ राजाओं के नाम लिखे हैं इसी प्रकार चन्द्र वंश की वंशावली में भी जो बुध से चलकर श्रीकृष्ण तक समाप्त होती है ४८ नाम पाये जाते

हैं। इससे रामचन्द्र का श्रीकृष्ण के समकालीन होना सिद्ध होता परन्तु जब महाभारत ग्रन्थ रामचन्द्र का त्रेता और द्वापर की सन्धि में होना बतलाता तब हमारा सन्देह और भी बढ़ जाता है औ पुराणों में लिखी वंशावलियें अपूर्ण अवश्य माननी पड़ती हैं हमा इस कथन की पुष्टि इस से भली भांति हो जाती है कि वाल्मीकि रामायणमें इक्ष्वाकुसे केवल ३५ पीढ़ियों के पश्चात् ही रामचन्द्र होना पाया जाता है हालांकि अन्य पुराणों में ५५से लेकर ५७ त राजाओं के नाम मिलते हैं। इसी प्रकार रामचन्द्र, विश्वामित्र, औ राजा जनक भी इन वंशावलियोंसे समकालीन नहीं ठहरते प्रत्युत सब एक ही समय में विद्यमान थे। इसके अतिरिक्त पुराणों में अने स्थानों में अनेक राजा समकालीन बताये गये हैं जो वंशावलियों एक दूसरेसे बहुत आगे पीछे आते हैं अतएव हम यहां उन सब उल्लेख न करके सूर्य और चन्द्रवंश का प्राचीन वंशवृक्ष श्रीमद्भाग तथा वाल्मीकी-रामायण से लेकर उद्धृत करते हैं।

रामायण और भागवत की उपर्युक्त वंशावलियें मिलाने से स्पष्ट विदित होता है कि यह पूर्ण और यथाक्रम कदापि नहीं हैं वरन् स्मरणसे वा सुन सुनाकर इनका पीछे संग्रह किया जाना स्पष्ट विदित होताहै और यह हमारा अनुमान ही नहीं है प्रत्युत भागवत स्वयं इन वंशावलियोंको पूर्ण नहीं बतलाती जैसा कि निम्न श्लोकसे प्रकट होगाः—

श्रूयतां मानवो वंशः प्राचुर्येण परंतपः ।
न शक्यते विस्तरतो वक्तुं वर्षशतैरपि ॥ स्कन्ध९अ०११२श्लो०७ ॥

अर्थात् हे राजन् ! इस मानव-वंश का सविस्तर वर्णन यदि आप के सम्मुख किया जावे तो सौवर्ष में भी समाप्त न होगा ।

इन्हीं अपूर्ण वंशावलियों को लेकर यूरोप के विद्वान् राम और कृष्ण का एक समय स्थिर करने की चेष्टा करते हैं और प्रत्येक राजा का शासन काल २७ वर्ष का अनुमान करके बुध और इक्ष्वाकु का समय मसीह से २२०० वर्ष पूर्व निश्चित किया है ।

जिस प्रकार कूप-मण्डूक (कुएँ के मेंडक)के ध्यान में महासागर का विस्तार कदापि नहीं आ सकता उसी प्रकार बाइबिलकी शिक्षानुसार ५००० वर्ष से सृष्टि को मानने वाली श्वेत जातियां आर्यों के इतने बड़े सृष्टि काल को असत्य समझती हैं अथवा सत्य मान कर भी बाइबिलकी रक्षार्थ पक्षपातसे काम ले रहीं हैं परन्तु वैदिक मैगज़ीन के आगे अब इस शीशेके महल की रक्षा होना कठिन है ।

टाड साहिब ने सूर्य और चन्द्र वंश के वंश-वृक्ष में बड़ा गड़बड़ कर दिया है उन्होंने सूर्यवंश में रामचन्द्र तक ५८ राजा लिखे हैं जिनमें सगरकी स्त्री केशिनी वा सुकेशी तथा नल आदि कई राजाओं के नाम लिख दिये हैं इसी प्रकार चन्द्रवंशमें एक स्थान पर घृताची नाम लिखा है जो कि एक अप्सरा थी और कहीं भरत को शकुन्तला का पति लिख मारा है । जन्हु जो हमारे चन्द्रवंश के वृक्ष में पुरूरवा से सातवां राजा लिखा है उसे रामचन्द्र और विश्वामित्र का समय मिलाने के लिये बिना किसी प्रमाण के अजमीढ़का पुत्र लिख दिया है । निदा०. हमें इन वंशावलियोंको अपूर्ण मानकर रामचन्द्र, विश्वामित्र आदि राजाओं के समकालीन होने में जिन का वर्णन ऐतिहासिक ग्रन्थों में मिलता है किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिये ।

प्राचीन समय में देव और असुरों के संग्राम की अनेक घटनायें जो हमें पुराणों में लिखी मिलती हैं (आर्ष ग्रन्थों की इन्द्र, वृत्र आदि आलङ्कारिक कथाओं को छोड़ कर) सब बातें हमें बड़े ध्यान से मनन करने योग्य हैं। प्राचीन समय में अनेक युद्धों में राक्षसों ने आर्यों को पराजित किया उसका कारण सदैव यही देखने में आया है कि आर्य लोगों ने जब २ अनेक कलायन्त्रों का आविष्कार किया तो दूसरों को उन के निर्माण आदि की विधि बताने में कभी सङ्कोच नहीं किया और वे ऐहिक और पारमार्थिक दोनों प्रकार के सुखों की सामग्री मनुष्यमात्र के लिये एकत्रित करते रहे परन्तु राक्षस लोग जब कभी विज्ञान में आर्यों से बढ़ गये अधर्म युद्ध कर के उन्हें अनेक प्रकार से पीड़ित करना आरम्भ कर दिया। इतिहास हमें बतलाता है कि राक्षसों ने बाहुबल से कभी आर्यों को पराजित नहीं किया वरन् अनेक कलायन्त्र निर्माण करके ही उन को परास्त करते रहे हैं। राक्षसों का आर्यों से कभी २ कलायन्त्रों के निर्माण करने में आगे बढ़जाने का एक यह भी कारण था कि उन्हें खाने, पीने और संसार में अपनी शक्ति बढ़ाने के अतिरिक्त अन्य कोई काम नहीं था इस के प्रतिकूल आर्यों का कम से कम ३/४ समय विद्या प्राप्त करने और पारमार्थिक सुखों के सञ्चय में समाप्त होता था परन्तु जब ही आर्यों ने अपने शिर पर उनके शासनरूपी भार को अनुभव किया वैदिक विज्ञान से उनके समस्त कलायन्त्रों का मान मर्दन कर दिया।

ताटका, सुबाहु, मारीच, इन्द्रजित प्रभृति राक्षस जो धर्माधर्म का कुछ विचार न करके आकाश में युद्ध करते थे और दूसरों के आघात से बचने के लिये वहां भी अनेक भौतिक पदार्थों से सूर्य्य को आच्छादित करके अन्धकार में अन्तर्द्धान होजाते थे वैदिक-विज्ञान की प्रज्वलित अनल में पतंग की तरह भस्म होगये। इसी प्रकार त्रिपुर आदि राक्षस जो सोलह २ चक्रों के ऐसे शीघ्रगामी यान रखते थे कि जिन पर आरूढ़ हो ३ स्थानों से शत्रुओं पर प्रहार होता था परन्तु आर्यों के विज्ञान ने उन्हें भी भूतल-शायी बना कर 'सत्यमेव जयते नानृतम्' का पाठ इतिहास के पृष्ठों में स्वर्णाक्षरों से लिख दिया है जो अमिट है और सदा चमकता रहेगा।

आर्यों के विजातीय पुरुषों के साथ ही संग्राम नहीं हुए वरञ्च उन के पारस्परिक युद्ध के अनेक वर्णन भी पुराणों में पाये जाते हैं भविष्य पुराण में एक उस युद्ध का वर्णन पाया जाता है जो सगर और तालजङ्घ के मध्य हुआ था और जिस में हैहय-वंशियों को बड़ी भारी हानि उठानी पड़ी थी। इसी प्रकार वाल्मीकीय रामायण आदि पुस्तकों में ब्राह्मण और क्षत्रियों के मध्य भी युद्ध की कई कथायें मिलती हैं निदान टाड साहब ब्राह्मण और क्षत्रियों के युद्ध विषय में लिखते हैं किः—

"बड़े २ राजा महाराजा अपनी कन्याओं का विवाह राजर्षियों तथा ब्रह्मर्षियों से करते थे। पराक्रमी पाञ्चालिक की कन्या अहल्या; गौतम ऋषिकी भार्या हुई; यदुकुलकी बड़ी शाखा अर्थात् हैहय-वंशोत्पन्नमाहिष्मती के राजा सहस्रार्जुन की कन्या से जमदग्नि का विवाह हुआ था"

फिर सहस्रार्जुन शब्द पर टिप्पणी देते हुए लिखते हैं किः—

"* * * * जमदग्नि के पुत्र परशुराम के अवतार लेने तथा उन के वीरकार्यों की कथायें आलङ्कारिक आख्यान स्पष्ट प्रतीत होते हैं जिन से राजाओं का पृथ्वी पर अत्याचार करने का आशय विदित होता है जिस को उन्होंने पवित्र गोरूप * से वर्णन किया है और ब्राह्मण लोग क्षत्रियों से राज्य छीनने को समर्थ हुए इस से प्रकट होता है कि वे लोग संख्या में कितने बढ़ गये थे * * * *"

फिर आगे लिखते हैं किः—"जमदग्नि से मरहटे पेशवा तक भारतवर्ष में राज्याधिकार के लिये ब्राह्मणों के लड़ने के कई उदाहरण हमको मिले हैं राजर्षि विश्वामित्र और वसिष्ठ के नाईं जिन्हें पूज्य मानकर मिथला का राजा जनक हाथ जोड़ कर निवेदन करता था आज भी ब्राह्मणों को अधिकार और सम्मान की बड़ी अभिलाषा रहती है"

फिर विश्वामित्र शब्द पर टिप्पणी चढ़ाते हुए लिखते हैं किः—

"वसिष्ठ ऋषि के पास शबला नामक एक ऐसी फलदाता गऊ (कामधेनु) थी जिस की सहायता से वह अपनी सर्वकामना पूर्ण कर सक्ते थे उसकी सहायता से उन्होंने राजा विश्वामित्र का सेना सहित आतिथ्य सत्कार किया। इस कथा से प्रत्यक्ष है कि यहां पर गऊ से से अभिप्राय किसी भूमि भाग से है जो ऋषि के अधिकार में था (स्मरण रहे कि

---

* संस्कृत कोषों में निस्सन्देह पृथिवी का नाम "गौ" लिखा है यथाः—"गोः, ग्माज्मेत्यायेकविंशतिषु पृथिवी नामसु" निघण्टु ॥ तथा "गौरिति पृथिव्या नामधेयं" निरुक्त २। ५ ॥

गौ का अर्थ पृथिवी और गाय दोनों हैं) जो निस्सन्देह विश्वामित्र के किसी पूर्वज का दिया हुआ दान था । जिस को वह पीछा लेना चाहता था । उसी गौ से देवताओं एवं पित्रेश्वरों के लिये नैवेद्य अग्निहोत्र तथा यज्ञकार्य्य चलते थे यही शबला धर्मानुष्ठान की जड़ थी जिस के बदले राजा (विश्वामित्र) एक लक्ष गऊ देने लगा (वास्तव में) यह एक ऐसा रत्न था जो एक राजा ही के पास रहना चाहिये था प्रतीत होता है कि ऋषि की प्रजा ने ऐसे बदले को पसन्द नहीं किया और शबला गऊ के रँभाने से बहुत से विदेशी सहायक उपस्थित हो गये जिस से वह ऋषि उस राजा का सामना करने योग्य हो गये इन में से पह्लव (ईरानी) राजा, भयानक शक्ति, तथा तलवार एवं सुनहरे कवचधारी यवन (यूनानी) और काम्बोजी आदि क्रमशः इस कामधेनु से उत्पन्न हुए पह्लव राजाओं की सेना को विश्वामित्र ने खण्ड २ कर दिया और वह लगातार सहायक सेना उत्पन्न होने से अन्त में वसिष्ठ के सैन्य-समूह से पराजित हो गया ⁂ ⁂ "

फिर आगे चलकर "ब्राह्मणों को अधिकार" शब्दों पर निम्न प्रकार टिप्पणी चढ़ाते हुए अपने अन्तर्भावों का परिचय देते हैं:—

"भारतवर्ष में ब्राह्मण बहुत हैं जिन में वीरता का गुण होने से वे अच्छे सिपाही बन सक्ते हैं परन्तु हमारे अनुभवी अफ़सर रिसाले और पल्टन में उनके बहुत से आदमी भरती न करने में सावधान रहते हैं क्योंकि उन में अब तक बखेड़ा खड़ा करने का स्वभाव बना हुआ है । मैंने कई कम्पनियों में देखा है कि ब्राह्मण और वीर जाति के सिपाहियों की संख्या बराबर है यह बड़ी भयानक भूल है । "

हम उपर्युक्त लेखों के ऊपर किसी प्रकार की टिप्पणी चढ़ाना उचित नहीं समझते परन्तु यह स्पष्ट है कि ब्राह्मण और क्षत्रियों के मध्य युद्धाग्नि उसी समय प्रज्वलित हुई थी जब कि वर्णव्यवस्था में कुछ न कुछ त्रुटियें उत्पन्न हो गई थीं । इतिहास तो हमें यही बतलाता है कि इस समर-यज्ञ में आहुति डालने का आरम्भ क्षत्रियों की ओर से कियागया और यह सम्भव भी है क्योंकि श्रीसम्पन्न पुरुषों में अभिमान आदि अवगुण अवश्य ही प्रवेश कर जाते हैं । निदान यह अग्नि बराबर प्रज्वलित होती चलीगई और तब तक शान्त न हुई

अब तक कि महर्षि जमदग्नि के पुत्र परशुराम ने सहस्त्रार्जुन के पुत्रों द्वारा वध किये अपने पिता का बदला लेने के लिये अत्यन्त क्रोधित हो भारतवर्ष के क्षत्रियों को एक सिरे से दूसरे सिरे तक और एक वार नहीं २१ वार ढूंढ़ २ कर नष्ट न कर दिया। यद्यपि क्षत्रिय लोग ब्राह्मणों से धन, सहायक आदि बलों में अधिक थे परन्तु महर्षि वसिष्ठ और विश्वामित्र जी के युद्ध का परिणाम देखने से विदित होता है कि ब्राह्मणों को विज्ञान-बल से ही उन्हें जय-लाभ हुआ था। वसिष्ठ और विश्वामित्रके युद्ध में क्षत्रियोंकी इतनी हानि नहीं हुई जितनी कि उन्हें परशुराम के साथ संग्राम करने में उठानी पड़ी निदान भारतके एक सिरेसे लेकर दूसरे सिरे तक २१ वार जय-पताका उड़ाके परशुरामने क्षत्रियों से भारतको शून्य कर दिया जैसा कि महाभारत आदिपर्व अध्याय ६४ के निम्न श्लोकों से विदित होता है:—

त्रिसप्त कृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां पुरा।
जामदग्न्यस्तपस्तेपे महेन्द्रे पर्वतोत्तमे॥ १॥
तदा निःक्षत्रिये लोके भार्गवेण कृते सति।
ब्राह्मणान् क्षत्रिया राजन्! सुतार्थिन्योऽभि चक्रमुः॥ २॥
ताभिः सह समापेतुर्ब्राह्मणाः शंसित व्रताः।
ऋतावृत्तौ नरव्याघ्र! न कामान्नानृतौ तथा॥ ३॥
तेभ्यश्च लेभिरे गर्भं क्षत्रियास्ताः सहस्रशः।
तथा सुषुविरे राजन्! क्षत्रियान् वीर्यवत्तरान्॥ ४॥"

अर्थः—जब २१ वार युद्ध करके भार्गव (परशुराम) ने क्षत्रियों से पृथ्वी को शून्य कर दिया तो वे महेन्द्राचल पर तप करने चले गये॥ १॥ भार्गव द्वारा क्षत्रियों से शून्य लोक देख कर उन की विधवा स्त्रियें ब्राह्मणों के पास आकर सन्तान की इच्छा करने लगीं*॥ २॥ ब्राह्मणों ने प्रत्येक को मासिक धर्म के पश्चात् और काम के वशीभूत न होकर‡ ऋतु दान दिया॥ ३॥ इससे सहस्त्रों क्षत्रिया गर्भवती हुईं और शूर-वीर बालक उत्पन्न किये।

---

*धर्मशास्त्र में द्विज स्त्रि-पुरुषों को एक से अधिक विवाह करने की आज्ञा नहीं है। यदि सन्तान की इच्छा हो तो अपने समान वा अपने से श्रेष्ठ वर्ण के साथ नियोग करने की विधि लिखी है।

‡धर्मशास्त्र में लिखी है कि यदि नियुक्त स्त्रि, पुरुष कामचेष्टा से समागम करें तो गुरु और पुत्र-वधू के साथ गमन करने के दोष को प्राप्त हों यथा:—"तावुभौ पतितौ स्यातां स्नुषागगुरुतल्पगौ" मनु० ९। ६३॥

निदान इसी प्रकारकी अनेक ऐतिहासिक घटनायें रामायण और महाभारतके अतिरिक्त अनेक पुराणोंमें भरी पड़ी हैं चाहें वर्त्तमान अपूर्ण वंशावलियोंसे एक राजा दूसरे राजा अथवा ऋषि, मुनियों का समकालीन न ठहरे तथापि वास्तवमें वे एक ही समय में उत्पन्न हुए हैं।

प्राचीन ग्रन्थों में राजाओं तथा अनेक महान् पुरुषों का नाम मात्र ही लिखा होनेसे और भी एक प्रकार का गड़ बड़ उत्पन्न होता है क्योंकि बहुत से राजपुरुषों के वंशवृक्षों में एक ही प्रकार के नाम पाये जाते हैं यथा भरत, दिलीप सत्यव्रत, दशरथ आदि। अर्थात् "एक भरत रामचन्द्रके भाई सूर्यवंशी थे दूसरे शकुन्तला-पुत्र चन्द्रवंशी" चन्द्रवंश में "एक जह्नु राजा का नाम बुध से ७वीं पीढ़ी में लिखा है और दूसरे का ३१वीं पीढ़ी में" इसी प्रकार सूर्यवंश के वृक्षकी ४८वीं में "दशरथ वा सत्यव्रत" तत्पश्चात् ५५ वीं पीढ़ी में 'दशरथ' नाम लिखा है" इसी प्रकार चन्द्रवंशके वंशवृक्षमें भी दिलीप आदि नाम पाये जाते हैं यदि किसी ग्रन्थ में हमें दो भिन्न २ समयों में उत्पन्न हुए एक ही नाम के राजाओं की दो समयों की (जिन में कि सहस्त्रों वर्षोंका अन्तर है) ऐतिहासिक घटनायें मिलती है तो उन की इतनी बड़ी आयु का चिन्तन करके हमें परमाश्चर्य होता है* परन्तु यह ऐतिहासिक घटनायें जिन का हम पुराणादि अनेक ग्रन्थों में लगभग एक सा ही उल्लेख पाते हैं "नह्यमूला जन-श्रुति" की लोकोक्ति के अनुसार अविश्वस्त कदापि नहीं हैं।

आर्योंके नित्य नैमित्तिक कार्योंका संक्षिप्त परिचय

किसी जाति की उच्चता, सभ्यता और विद्वत्ता का परिचय उस के आचार, विचार और व्यवहारों से ही मिलता है यदि मूर्ख जातियें अपने समय को व्यर्थ नष्ट करना भी आनन्ददायक समझती हैं तो इसके प्रतिकूल शिक्षित जातियें अपने समय और धन को ऐसे सुकार्यों में लगाती हैं जिससे उन्हें ही ऐहिक और पारलौकिक सुखों की प्राप्ति न हो वरन् संसार को भी लाभ पहुंचे। जब हम किसी जाति विशेष वा सम्प्रदाय के मनुष्यों से यह प्रश्न करते हैं कि अनेक त्यौहारों

---

*जिन परशुराम से भीष्म और कर्ण ने अस्त्र-विद्या सीखी थी बहुत से लोगों का विचार है कि यह वही थे जिन्होंने २१ बार क्षत्रियों को पराजित किया था परन्तु यह उनका भ्रम है। यह उसी नाम के दूसरे ऋषि थे।

घरें पशुहिंसा करने, मुर्दा (शव) गाढ़ने, किसी शारीरिक अंग विशेष को काटलें, एक २ मास तक निरन्तर दिन को भूखे रहने और रात्रि को खूब डट कर पेट भरने आदि बातोंमें क्या २ लाभ हैं ? तो उत्तर यही मिलता है कि यह हमारे मत की रीति (रस्म) है परन्तु आर्यों के एक २ नित्य नैमित्तिक कर्मों के अन्दर विज्ञान (Science) भरी हुई है और एक २ के लाभों की व्याख्या करने में एक २ बृहद् ग्रन्थ लिखा जा सकता है आर्यों के ५ नित्य और १६ नैमित्तिक कर्म आर्ष-ग्रन्थोंमें वर्णित हैं उनमें से पहले हम नित्यकर्मों का वर्णन करते हैं।

१ ब्रह्मयज्ञ—इसी को सन्ध्योपासन भी कहते हैं मनु में प्रातः और सायङ्काल दो समय इसके लिये निर्धारित किये हैं। प्रातःकाल की सन्ध्या का समय ४ बजे प्रातः से लेकर सूर्य के उदय होने तक और सायङ्काल का सूर्यास्त से नक्षत्रों के भली भांति लक्षित होने लिखा है। सन्ध्योपासन करनेसे प्राणायाम द्वारा जहां मन एकाग्र एवं बुद्धि सूक्ष्म होकर अनेक गुप्तरहस्यों के समझने योग्य होती है वहां ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभावों का नित्य चिन्तन करने से क्रमशः ज्ञान की उन्नति होकर आत्मा बलवान् होता चलाजाता है और इसी प्रकार अभ्यास करते २ मनुष्य स्वात्मा से परमात्मा को अनुभव करने और योगाभ्यास द्वारा उसे प्राप्त करने का अधिकारी बनता है। प्राचीन आर्य स्त्रि-पुरुष चाहे कितना ही सङ्कट क्यों न आपड़े इसको नियमपूर्वक दोनों समय करते थे। जब हनुमान् जी सीता जी को ढूंढने लङ्का में गये थे तो उन्होंने अनुमान किया था कि "सन्ध्या काल मनाः श्यामा ध्रुव मेष्यति जानकी। नदीं चेमां शुभजलां सन्ध्यार्थे वरवर्णिनी॥" सुन्दर काण्ड १४। ४९ अर्थात् सन्ध्या काल होने पर शुभमुखी जानकी जी अवश्यही इस निर्मल-वारि-पूरित-सरिताके तट सन्ध्या करने आवेंगी निदान ऐसा ही हुआ।

२ देवयज्ञ—इसे अग्निहोत्र भी कहते हैं आर्षग्रन्थों में लिखा है कि मनुष्य मल मूत्रादिसे जितने जल, वायु को दूषित करता है उतने ही सुगन्धित द्रव्य जलाकर उसे दुर्गन्धि का निवारण करना उचित है जब २ संसार में वैदिककर्मों का लोप होकर जल वायु दूषित होजाते हैं तो प्लेग (महामारी) आदि अनेक भयानक रोग संसार में फैल

निदान इसी प्रकारकी अनेक ऐतिहासिक घटनायें रामायण और महाभारतके अतिरिक्त अनेक पुराणोंमें भरी पड़ी हैं चाहें वर्त्तमान अपूर्ण वंशावलियोंसे एक राजा दूसरे राजा अथवा ऋषि, मुनियों का समकालीन न ठहरे तथापि वास्तवमें वे एक ही समय में उत्पन्न हुए हैं।

प्राचीन ग्रन्थों में राजाओं तथा अनेक महान् पुरुषों का नाम मात्र ही लिखा होनेसे और भी एक प्रकार का गड़ बड़ उत्पन्न होता है क्योंकि बहुत से राजपुरुषों के वंशवृक्षों में एक ही प्रकार के नाम पाये जाते हैं यथा भरत, दिलीप सत्यव्रत, दशरथ आदि। अर्थात् "एक भरत रामचन्द्रके भाई सूर्यवंशी थे दूसरे शकुन्तला-पुत्र चन्द्रवंशी" चन्द्रवंश में "एक जह्नु राजा का नाम बुध से ७वीं पीढ़ी में लिखा है और दूसरे का ३१वीं पीढ़ी में" इसी प्रकार सूर्यवंश के वृक्षकी ४८वीं में "दशरथ वा सत्यव्रत" तत्पश्चात् ५५वीं पीढ़ी में 'दशरथ' नाम लिखा है" इसी प्रकार चन्द्रवंशके वंशवृक्षमें भी दिलीप आदि नाम पाये जाते हैं, यदि किसी ग्रन्थ में, हमें दो भिन्न २ समयों में उत्पन्न हुए एक ही नाम के राजाओं की दो समयों की (जिन में कि सहस्रों वर्षोंका अन्तर है) ऐतिहासिक घटनायें मिलती है तो उन की इतनी बड़ी आयु का चिन्तन करके हमें परमाश्चर्य होता है* परन्तु यह ऐतिहासिक घटनायें जिन का हम पुराणादि अनेक ग्रन्थों में लगभग एक सा ही उल्लेख पाते हैं "नह्यमूला जनश्रुति" की लोकोक्ति के अनुसार अविश्वस्त कदापि नहीं हैं।

आर्योंके नित्य-नैमित्तिक कार्योंका संक्षिप्त परिचय

किसी जाति की उच्चता, सभ्यता और विद्वत्ता का परिचय उस के आचार, विचार और व्यवहारों से ही मिलता है यदि मूर्ख जातियें अपने समय को व्यर्थ नष्ट करना भी आनन्ददायक समझती हैं, तो उसके प्रतिकूल शिक्षित जातियें अपने समय और धन को ऐसे सुकार्यों में लगाती हैं जिससे उन्हें ही ऐहिक और पारलौकिक सुखों की प्राप्ति न हो वरन् संसार को भी लाभ पहुंचे। जब हम किसी जाति विशेष वा सम्प्रदाय के सत्पुरुषों से यह प्रश्न करते हैं कि अनेक त्यौहारों

*जिन परशुराम से भीष्म और कर्ण ने अस्त्र-विद्या सीखी थी बहुत से लोगों का विचार है कि यह वही थे जिन्होंने २१ बार क्षत्रियों को पराजित किया था, परन्तु यह उनका भ्रम है। यह उसी नाम के दूसरे ऋषि थे।

पर पशुहिंसा करने, मुर्दा (शव) गाढ़ने, किसी शारीरिक अंग विशेष को काटने, एक २ मास तक निरन्तर दिन को भूखे रहने और रात्रि को खूब डट कर पेट भरने आदि बातोंमें क्या २ लाभ हैं ? तो उत्तर यही मिलता है कि यह हमारे मत की रीति (रस्म) है परन्तु आर्यों के एक २ नित्य नैमित्तिक कर्मों के अन्दर विज्ञान (Science) भरी हुई है और एक २ के लाभों की व्याख्या करने में एक २ वृहद् ग्रन्थ लिखा जा सकता है आर्यों के ५ नित्य और १६ नैमित्तिक कर्म आर्ष-ग्रन्थोंमें वर्णित हैं उनमें से पहले हम नित्यकर्मों का वर्णन करते हैं।

१ ब्रह्मयज्ञ—इसी को सन्ध्योपासन भी कहते हैं मनु में प्रातः और सायङ्काल दो समय इसके लिये निर्धारित किये हैं। प्रातःकाल की सन्ध्या का समय ४ बजे प्रातः से लेकर सूर्य के उदय होने तक और सायङ्काल का सूर्यास्त से नक्षत्रों के भली भांति लक्षित होने लिखा है। सन्ध्योपासन करनेसे प्राणायाम द्वारा जहां मन एकाग्र एवं बुद्धि सूक्ष्म होकर अनेक गुप्तरहस्यों के समझने योग्य होती है वहां ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभावों का नित्य चिन्तन करने से क्रमशः ज्ञान की उन्नति होकर आत्मा बलवान् होता चलाजाता है और इसी प्रकार अभ्यास करते २ मनुष्य स्वात्मा से परमात्मा को अनुभव करने और योगाभ्यास द्वारा उसे प्राप्त करने का अधिकारी बनता है। प्राचीन आर्य स्त्रि-पुरुष चाहे कितना ही सङ्कट क्यों न आपड़े इसको नियमपूर्वक दोनों समय करते थे। जब हनुमान् जी सीता जी को ढूंढने लङ्का में गये थे तो उन्होंने अनुमान किया था कि "सन्ध्या काल मनाः श्यामा ध्रुव मेष्यति जानकी। नदीं चेमां शुभजलां सन्ध्यार्थे वरवर्णिनी॥" सुन्दर काण्ड १४। ४९ अर्थात् सन्ध्या काल होने पर शुभमुखी जानकी जी अवश्यही इस निर्मल-वारि-पूरित-सरिताके तट सन्ध्या करने आवेंगी निदान ऐसा ही हुआ।

२ देवयज्ञ—इसे अग्निहोत्र भी कहते हैं आर्षग्रन्थों में लिखा है कि मनुष्य मल मूत्रादिसे जितने जल, वायु को दूषित करता है उतने ही सुगन्धित द्रव्य जलाकर उसे दुर्गन्धि का निवारण करना उचित है जब २ संसार में वैदिककर्मों का लोप होकर जल वायु दूषित होजाते हैं तो प्लेग (महामारी) आदि अनेक भयानक रोग संसार में फैल

जाते हैं। इसी लिये द्विजमात्र को दोनों समय अग्निहोत्र करने की ताकीद की गई है।

३ पितृयज्ञ—वृद्ध पितर* (माता, पिता) की सेवा करना पितृयज्ञ है इसके दो भेद हैं (१) श्राद्ध (२) तर्पण। श्रद्धा से जो कर्म किया जाता है उसे श्राद्ध कहते हैं यथा "श्रद्धया यत्क्रियते तच्छ्राद्धम्" और जिस से माता पितादि पितर प्रसन्न हों वह तर्पण कहलाता है। पितृयज्ञ जीवित पितरों का ही होता है मरे हुओं का नहीं।

४ भूतयज्ञ—इसे बलिवैश्वदेव कहते हैं भोजनके पूर्व दशों दिशाओं तथा जल के भीतर इसमें आहार डाला जाता है और कुत्ता, पतित, चाण्डाल, पापरोगी, काक और कृमि तक को भी भाग देनेका विधान हैं इसका मुख्य तात्पर्य यह है कि असमर्थ मनुष्यों तथा जल में रहने वाले जीव जन्तुओं तक को आहार पहुंच जावे।

५ अतिथियज्ञ—जो मनुष्य कि चतुर्थाश्रम अर्थात संन्यासाश्रम में प्रवेश कर के मनुष्यों को अविद्यान्धकूप से बाहर निकालने के लिये नित्य यत्र तत्र भ्रमण करते हैं उनका भोजनादि से सत्कार करना अतिथियज्ञ कहाता है।

१६ संस्कार जिन का वर्णन मनुस्मृति और गृह्य सूत्रादि आर्ष ग्रन्थों में पाया जाता है आर्यों के नैमित्तिक कर्म हैं। संस्कार शब्द का अर्थ ही यह है कि "संस्क्रियते अनेन इति संस्कारः" अर्थात् जिससे मनुष्योंकी शुद्धि और सुधार हो उनका नाम संस्कार है। जिस प्रकार एक कच्चा घड़ा विना अग्निसंस्कार हुए जल धारण करने के योग्य नहीं बनता उसी प्रकार मनुष्य भी संस्कृत हुए विना मेधावी, बलवान् और धर्मात्मा कदापि नहीं बन सक्ता। यह वैदिकसंस्कारों का ही प्रभाव था कि इस देशमें कुमारिल, शङ्कराचार्य और दयानन्द सरस्वती‡ जैसे परम-विद्वान्, अमित-मेधावी और वेदों के ज्ञाता ब्रह्मर्षि इस युग में भी उत्पन्न हुए। इन संस्कारों से मनुष्य यशस्वी

* संस्कृत में माता पिता दोनों के लिये पितर शब्द आता है यथाः—
"अपश्यं तस्य पितरौ लूनपक्षा विनाद्विजौ" अयो० ६४। ४॥ अर्थात् श्रवण मुनि के मरने पर राजा दशरथ जब जल का घड़ा ले गये तो उनके पितरों को पंखहीन पक्षियों के समान बैठे देखा।

‡यद्यपि इस प्रदेश में वैदिक संस्कार लुप्त प्राय हो गये हैं परन्तु दक्षिण-प्रान्त में अब तक सोलहों संस्कार करने की परिपाटी है।

और प्रतापी ही नहीं होते वरञ्च बाल्यकाल के अनेक शीतला आदि रोग उत्पन्न होने का भय भी बिलकुल नहीं रहता। माता पिता के आचार विचारों का सन्तान के ऊपर जो प्रभाव पड़ता है उस का सूक्ष्म दृष्टि से अनुभव करके ही आर्यों ने गर्भाधान को भी एक संस्कार माना है यद्यपि एक २ संस्कार की व्याख्या करने को यहां स्थान नहीं है परन्तु हम यहां केवल उन के नाम मात्र दिये देते हैं जिन्हें विधि देखनी हो वे गृह्यसूत्रों वा महर्षि दयानन्द सरस्वती निर्मित संस्कार-विधि में देखें।

(१) गर्भाधान (२) पुंसवन (३) सीमन्तोन्नयन (४) जातकर्म (५) नामकरण (६) निष्क्रमण (७) अन्नप्राशन (८) चूड़ाकर्म (९) कर्णवेध (१०) उपनयन (११) वेदारम्भ (१२) समावर्त्तन (१३) विवाह (१४) गृहस्थाश्रम (१५) वानप्रस्थ (१६) संन्यास।

इन के अतिरिक्त अन्त्येष्टि भी एक संस्कार है परन्तु वह जीवन दशा में नहीं होता अन्य १६ जीव से सम्बन्ध रखते हैं।

चार आश्रम

संसाररूपी महासागर से पार उतरने के लिये ऋषियों ने इस आयुरूपी यात्रा के चार विभाग किये हैं जो चार आश्रमों के नाम से विख्यात हैं अर्थात् १ ब्रह्मचर्य २ गृहस्थ ३ वानप्रस्थ और ४ संन्यास। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के बालकों को सामान्यतया आठवें, ग्यारहवें और बारहवें वर्षों में क्रमशः उपनयन करा कर गुरुकुल में भेज १५, ३०, ३६, ४४ वा ४८ वर्ष तक इन्द्रियजित हो साङ्गोपाङ्ग * चारों वेदों तथा उपवेदों† का यथाविधि पढ़ना ब्रह्मचर्याश्रम कहाता है। सुश्रुत में लिखा है कि:—

चतस्रोऽवस्थाः शरीरस्य वृद्धिर्यौवनं सम्पूर्णता किञ्चित्परिहाणिश्चेति।

---

* प्राचीन ऋषियों ने वेदों की रक्षार्थ वेदों के छः अङ्ग और छः उपाङ्ग रचे हैं जिससे स्वार्थी लोग आज कल की भांति वेदार्थों का अनर्थ न करने लगें। वेद मन्त्रों के अर्थ जो सायण, महीधर आदि एतद्देशीय और मैक्समूलर, विलसन आदि विदेशीय विद्वानों ने किये हैं वे वेद के अङ्ग और उपाङ्गों के प्रतिकूल होने से कदापि माननीय नहीं हो सक्ते। वेद के छः अङ्ग ये हैं अर्थात् १- शिक्षा (शुद्ध उच्चारण के नियम) २-कल्प (गृह्यसूत्र और वेदी आदि बनाने के रेखागणित सम्बन्धी नियम) ३-व्याकरण (शब्द शास्त्र) ४-निघण्टु (वैदिक शब्दों का कोष) ५-छन्द (छन्द रचना का शास्त्र) ६-ज्योतिष (भूगोल तथा खगोल विद्या का शास्त्र)। शास्त्रों को उपाङ्ग कहते हैं यथा १ सांख्य २ योग ३ वैशेषिक ४ न्याय ५ पूर्वमीमांसा और ६ वेदान्त।

† चार उपवेद यह हैं १ आयुर्वेद (चिकित्सा शास्त्र) २ अर्थवेद (शिल्प शास्त्र) ३ गान्धर्व (गान तथा वाद्य का शास्त्र) ४ धनुर्वेद (अस्त्र शस्त्र विद्या का शास्त्र)।

आषोडशाद्वृद्धिः । आपञ्चविंशतेर्यौवनं । आचत्वांरिशतः सम्पूर्णता ॥
सुश्रुत सूत्रस्थान अध्याय ३५ ॥

अर्थात् इस शरीर की चार अवस्था हैं १ वृद्धि (१६ से २५ वर्ष तक धातुओं की वृद्धि होती है) २ यौवन २५ के पश्चात् युवावस्था का आरम्भ ३ सम्पूर्णता (२५से ४० तक सब धातुओंकी पुष्टि होती है)

उपर्युक्त सुश्रुत–वाक्य से प्रकट है २५ वर्ष से पूर्व गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना सन्तानको निर्बल और निस्तेज बनाना है क्योंकि वीर्य जिस का इस आश्रम में शरीर से वियोग होता है सर्व धातुओं के पश्चात् बनता है यथाः–

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते ।
मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्ञः शुक्रस्य सम्भवः ॥
सुश्रुत सूत्रस्थान अध्याय १४ ॥

अर्थ-रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेद (चर्बी), मेद से से अस्थि, अस्थि से मज्जा (जो अस्थियों के भीतर भरा रहता है) और मज्जा से वीर्य उत्पन्न होता है ।

जो मनुष्य २५ से लेकर ४८ वर्ष पर्य्यन्त उत्तरोत्तर जैसे २ ब्रह्मचर्य्य का पालन करता है वह उत्तरोत्तर वैसा ही बली, मेधावी और पराक्रमी होता है और ४८ वर्ष पर्य्यन्त ब्रह्मचर्य्य पालन करनेवाले के तो समस्त अंग वज्र के समान ऐसे दृढ़ हो जाते हैं कि अस्त्र, शस्त्र भी उन पर बहुत कम असर करते हैं । परशुराम ने यदि अकेले खड़े होकर २१ वार क्षत्रिय को पराजित किया और वृद्ध भीष्मपितामह ने महाभारत में प्रतिदिन दश २ सहस्र योद्धाओं का संहार कर दिया तो यह उन के ब्रह्मचर्य्य का ही प्रताप था । सुश्रुत में लिखा है किः—

यथा पयसि सर्पिस्तु गूढश्चेक्षौ रसो यथा ।
शरीरेषु तथा शुक्रं नृणां विद्याद्भिषग्वरः ॥ (शारीरस्थान)

जैसे दूध में घी और ईख में रस गुप्त भाव से उसके सब भागों में व्याप्त रहता है इसी प्रकार वीर्य समस्त देह में व्याप्त ही रहा है। यह वीर्य स्त्रि-प्रसङ्ग से ही नष्ट नहीं होता वरन् कुविचारों और कुचेष्टाओं के करने से भी इसका पात होजाता है, इसी से शास्त्रकारों ने स्त्रियों के स्मरण, कीर्त्तन, आलिङ्गन और एकान्त में भाषण करने आदि आठ प्रकार की कुचेष्टाओं को भी मैथुन के अन्तर्गत माना है ।

ब्रह्मचर्य्य के न धारण करने से मनुष्य निर्बल, निस्तेज और अल्प पराक्रमी ही नहीं होता वरञ्च अजितेन्द्री पुरुष मस्तिष्क की निर्बलता के कारण पूर्णविद्या धारण करनेकी शक्ति को भी खो बैठता है जैसा कि मनु में लिखा है:-

एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत्कचित् ।
कामाद्धि स्कन्दयेतो हिनस्ति व्रतमात्मनः ॥ २ । १८० ॥

अर्थ- ब्रह्मचारी अकेला सोवे और वीर्य स्खलित कभी न करे जो कामना से वीर्य स्खलित कर दे तो जानो कि अपने ब्रह्मचर्य व्रत का नाश कर दिया ।

२ गृहस्थ—जब कुमार और कुमारी ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर गुरुकुल से लौटें तो उन्हें प्रसन्नता पूर्वक अपने तुल्य भर्त्तिका और भर्त्ता को प्राप्त हो गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने का नियम है जिस प्रकार पुरुषों का २५ । ३० । ३६ । ४० । ४४ और ४८ वर्ष तक ब्रह्मचर्य धारण करनेकी आज्ञा है उसी प्रकार कुमारी को १६ । १७ । १८ । २० । २२ और २४ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य धारण करके अपने तुल्य ब्रह्मचारी पति को प्राप्त होने का आदेश मिलता है। इस से आगे समस्त आयु पर्यन्त ब्रह्मचर्य्य धारण की विधि है । सुश्रुत नामक वैद्यक के मान्य ग्रन्थ में यह लिखा होते हुए भी कि" यदि १६ वर्ष की अवस्था से न्यून की स्त्री और २५ से कम का पुरुष गर्भाधान करते हैं तो यह गर्भ नहीं रहता या सन्तान निर्बल होती है " आर्य्यसमाज के गुरुकुलों की स्कीम देखकर योरुप के विद्वान् परिहास किया करते थे और कहा करते थे कि इस गरम देशमें इतने अधिक समय तक ब्रह्मचर्य धारण नहीं किया जा सकता परन्तु हरद्वार, फ़र्रुख़ाबाद आदि गुरुकुलों ने प्रत्यक्ष प्रमाणों से उन के भ्रम का मूलोच्छेदन कर दिया है ।

माता पिता के आचार का भी सन्तान के ऊपर भारी प्रभाव पड़ता है जिस पुरुष के माता पिता जितेन्द्रिय नहीं है वह ब्रह्मचर्य धारण करने पर भी जैसा चाहिये वैसा बलवान् नहीं होसकता । हम देखते हैं कि घोड़े, बैल आदि पशु जो कठिन से कठिन परिश्रम कर सकते हैं उनमें यह शक्ति केवल इसी कारण है कि वे ऋतुगामी होते हैं परन्तु मनुष्य इस समय पशुओं से भी आचारमें गिर गया है और

यही कारण है कि हम दिन पर दिन निर्बल होते चले जा रहे हैं। प्राचीन पुरुष जो ऋतुगामी होते थे उनकी सन्तानें भी ऐसी बलिष्ट होती थीं कि सोलह २ वर्ष की अवस्थाके बालक सिंहशावकोंका मुख फाड़ २ कर उनके दान्त गिनते थे* पाश (कमन्द) डाल कर दौड़ते हुए बलवान् घोड़ों को अर्जुन द्वारा एक साथ रोक देनेकी बातें चाहें हमें मिथ्या जान जान पड़ें परन्तु इस समय में जिन्होंने बाल ब्रह्मचारी स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के द्वारा दो घोड़ोंकी चलती हुई गाड़ी को पकड़ कर रोक देने का दृश्य देखा है वे इन बातोंको कभी असत्य नहीं समझ सकते। इसी कारण धर्म-शास्त्र में ऋतुगामी पुरुष की बड़ी प्रशंसा की है यथाः—

निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन्।
ब्रह्मचार्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन् ॥ ३। ५० ॥

अर्थात् जो अपनी स्त्री से प्रसन्न और निषिद्ध रात्रियों में पृथक् रहता है वह गृहस्थ भी ब्रह्मचारीके सदृश है।

३—वानप्रस्थ जब शिरके केश श्वेत और त्वचा ढीली होजावें एवं लड़के का पुत्र उत्पन्न होगया हो तब सब सुख-सामग्री को त्याग और स्त्री को पुत्र के पास छोड़ वा अपने साथ ले आरण्य में बसने की धर्म-शास्त्र में आज्ञा है। वहां शाक, मूल, फल, फूल आदि ही खाने का विधान है और उन ही से पञ्चयज्ञ करने का आदेश पाया जाता है। प्राचीन मुनि लोग वहां अनेक प्रकारके शीतोष्णवातादि कष्ट सहन करके योगाभ्यास द्वारा परमात्मा का साक्षात् ही नहीं करते थे वरञ्च वहीं उन्होंने गुरुकुल भी बना रक्खे थे जिनकेद्वारा वे ब्रह्मचारियोंको वेद वेदाङ्गों की शिक्षा प्रदान करते थे। इस प्रकार आर्यों ने अपनी दूरदर्शिता से सर्वसाधारण के चित्त से अविद्या-रूपी-तृषा के वैकल्य को दूर करनेके लिये विद्या-रूपी-शान्ति-प्रदायिनी-सरिता का पीयूष-प्रवाह बहा रक्खा था और छोटी २ अवस्था से ही ब्रह्मचारियों को अनेक आरण्य-कष्ट सहन कराकर इस योग्य बना दिया जाता था कि वे संसारके महान्से महान् कष्टोंको सहन करने तथा कठिनसे कठिन कार्यों

*शकुन्तला पुत्र भरत जब कण्व ऋषिके आश्रममें अपनी माताके साथ रहते थे सिंहशावकोंका मुख फाड़२ कर उनके दान्त गिना करतेथे। यह बड़े प्रतापी राजा हुएहैं और इन्हींके समयमें आर्यावर्त्तसे इस देश का नाम भारतवर्ष हो गया था।

के करने योग्य बन जाते थे। इस समय में जब कि विद्यार्थी सहस्रों रुपये अपव्यय करके सेवा-वृत्ति (नौकरी) करनेके अतिरिक्त संसार के और किसी कामको करने योग्य नहीं रहते इस आवश्यक और लाभदायक आश्रम का नाम ही नाम सुनाई देता है और उन जितेन्द्रिय, पूर्ण विद्वान्, सदाचारी ऋषि मुनियोंकी जगह अजितेन्द्रिय, मूर्ख और क्रोधी वैरागी आदि सम्प्रदाइयों ने एवं अग्निहोत्रादि वैदिक कर्मोंका स्थान सुलफ़े और गांझेकी लपटोंने ले रक्खा है। आर्य्यसमाज का प्रादुर्भाव होने से अब कहीं २ एक दो ऐसे पुरुषों के नाम सुनने में आये हैं जिन्होंने इस आश्रम में प्रवेश किया है अतएव आशा है कि आर्य्यसमाज ही इस मरणासन्न आश्रम को कभी न कभी अवश्य चैतन्य करेगा।

४—संन्यास—इस प्रकार वनमें आयुका तीसरा भाग अर्थात् ५०वें वर्ष से लेकर ७५वें ※ वर्ष तक व्यतीत करके यज्ञोपवीत, शिखादि चिह्नों एवं अग्निहोत्र आदि वैदिक कर्मकाण्ड का त्याग कर के परिव्राठ अर्थात् संन्यासी होजावे ब्राह्मण-ग्रन्थों में लिखा है किः—

यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेद्वनाद्वा गृहाद्वाः ब्रह्मचार्या देव प्रव्रजेत् ।

अर्थात् जब वैराग्य हो वानप्रस्थ, गृहस्थ वा ब्रह्मचर्य से ही संन्यासी होजावे ।

यद्यपि ब्रह्मचर्य्य से ही संन्यास धर्म का पालन करना बड़ा कठिन है परन्तु ऐसे परिव्राट् पुरुष की शास्त्रों में बड़ी प्रशंसा लिखी है संन्यासी के मुख्य कर्म यही दो हैं कि एक तो ज्ञानकाण्ड में रत हो ओंकार पूर्वक सप्तव्याहृतियों से विधिपूर्वक जितनी शक्ति हो उतने प्राणायाम करे क्योंकि मनुमें लिखाहै कि जैसे अग्निमें तपाने और गलानेसे धातुओं के मल नष्ट होते हैं वैसे ही प्राणों के निग्रह से इन्द्रियों के दोष भस्मीभूत होतेहैं दूसरे यत्र तत्र भ्रमण करके गृहस्थादि आश्रमोंको सब प्रकार के सत्य का निश्चय करा धर्मयुक्त व्यवहारों में प्रवृत्त कराया करें जिस समय संन्यासाश्रम भारतवर्ष में नीरोग था उस समय मनुष्यों की सदुपदेशों से धर्म में ही प्रवृत्ति नहीं होती थी वरञ्च ईसाई, मुस-

※ सम्प्रति मनुष्यों की अवस्था १०० वर्ष की नहीं होती इस का कारण ब्रह्मचर्य व्रत का पालन न करना है वेदों में मनुष्य की अवस्था सामान्यता १०० वर्ष की लिखी है एवं अनेक विद्वानों का कथन है कि मनुष्य जितने वर्ष ब्रह्मचर्य्य धारण करता है उस की चतुर्गुणी आयु होसक्ती है इस हिसाब ४८ वर्ष के ब्रह्मचारी की आयु से वर्ष २०० के समीप पहुंचती है।

लमान आदि अवैदिक संत भी सूर्यके समक्ष दीपकके समान स्वतः ही श्रीहीन होकर नष्ट भ्रष्ट होजाते थे। यहां इन चारों आश्रमोंकी संक्षिप्त व्याख्या की है इनका सविस्तर वृत्त धर्मशास्त्र में देखना चाहिये।

यद्यपि हम पूर्व लिख चुके हैं कि ईश्वर निराकार और सर्व-व्यापक है अब हम अपने कथन की पुष्टि में वेद और शास्त्रों के प्रमाण उद्‌धृत करते हैं।

ईश्वर का स्वरूप और उसके गुण कर्म स्वभाव

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः। हिरण्यगर्भ इत्येषा माहिंसीदित्येषा यस्मात् न्नजात इत्यषः यजु० ३२। ३

अर्थः- उस परमात्मा की मूर्त्ति नहीं है, उसका नाम और यश बड़ा है वह सीमारहित अनन्त और सर्व व्यापक है और जो तेजधारी सूर्यादिकों की उत्पत्ति का कारण है उसी की उपासना करनी योग्य है।

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत्।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं विचार्य्यतं मृत्युमुखात्प्रमुच्यते॥
कठोपनिषद् ३। १५॥

अर्थ वह ब्रह्म शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि इन्द्रियों के विषयों से जानने योग्य नहीं है एवं वह अविनाशी है, नित्य है, अनादि है, अनन्त है और महत्तत्त्व से भी सूक्ष्म है उसी को जान के मनुष्य मृत्यु के मुख से छूटता है।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेवभान्तमनुभाति सर्वं तस्य भा सा सर्वमिदं विभाति। मुण्डक २।१० ॥

अर्थ-जब ब्रह्ममें सूर्य, चन्द्र, तारे और बिजुलीही प्रकाश नहीं कर सक्के तो यह भौतिक अग्नि कैसे प्रकाश कर सक्ती है किन्तु यह सूर्य और समस्त पदार्थ केवल उसी की आभा से प्रकाशित हो रहे हैं।

न तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोके न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम्।
स कारणान्तःकरणाधिपाधिपो न चास्य कश्चिज्जानिता न चाधिपः॥
श्वेताश्वर ६। ९॥

अर्थः-उस परमात्मा का जगत में न तो कोई पति है और न कोई उसका जनिता है वह सबका कारण* है और वही जीवों

* प्रत्येक कार्यके ३ कारण होते हैं यथा १ निमित्त २ उपादान और साधारण। यदि घट का दृष्टान्त लें तो १ कुम्हार निमित्त २ मृत्तिका(मिट्टी)उपादान और ३ दंड, चक्र आदि साधारण कारण होंगे। परमात्मा जगत् का निमित्त कारण है उपादान नहीं है।

का पति भी है; उसका न कोई उत्पत्ति-कर्त्ता है और न अधिपति है

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविर ᳇ शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ ईषो० ८ ॥

अर्थ-वह परमात्मा सब में व्यापक, शीघ्रकारी, अनन्त-पराक्रम युक्त, शुद्ध और सर्वज्ञ है एवं वह सब प्रकार के शरीर; नाड़ी, नसों के बन्धन, सर्वदुःखों और पापों से रहित है उसीकी उपासना करनी योग्य है।

उपर्युक्त प्रमाणों से विदित है कि वह परमात्मा निराकार और जीवन, मरण के दुःखों से सर्वथा रहित है जो मनुष्य उस के अवतारादि लेने की कल्पना करते हैं वे भ्रम में पड़े हैं।

स्तुति और प्रार्थना

बहुत से मनुष्य यह शङ्का किया करते हैं कि जब ईश्वर अपने नियम को छोड़ कर स्तुति और प्रार्थना करनेवाले पुरुष के किये हुये पाप क्षमा नहीं करता उस की स्तुति और प्रार्थना करना निरर्थक है परन्तु हमारे विचार में जो मनुष्य ऐसी आशङ्का करते हैं उन्होंने इन संस्कृत शब्दों के अर्थ को भली भांति नहीं समझा। संस्कृत में 'स्तुति' किसी वस्तु के गुण वर्णन करने को कहते हैं यथा आकाश का गुण शब्द, वायु का स्पर्श, अग्नि का रूप, जल का रस और पृथ्वी का गन्ध है तो यह उपर्युक्त पञ्चभूतों की स्तुति हुई। ईश्वर अनन्तगुणस्वभाव वाला है और जब तक निराकार, सर्वशक्तिमान्, दयालु, अनन्त आदि उसके गुणों का कीर्त्तन न किया जावे तब तक उस में प्रेम उत्पन्न नहीं होता और न अपने आचरण ही सुधर सक्ते हैं। ईश्वर की प्रार्थना करने से बुद्धि बढ़ती है और वेदानुकूल शुभकर्मों के करने में परमात्मा सहायता भी प्रदान करते हैं परन्तु किसी अशुभ-कामना से यदि कोई पुरुष ईश्वर की प्रार्थना करे तो उस की प्रार्थना उस मनुष्य की तरह निष्फल हो जाती है जो राज्य व्यवस्था के प्रतिकूल कार्य करने के लिये राजा से सहायता की प्रार्थना करता है।

उपासना

परमात्मा को साक्षात् करने वा उन से मिलने की क्रिया को उपासना कहते हैं महर्षि पतञ्जलि अपने योग शास्त्र में लिखते हैं कि:—

"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।१।१।२॥ तदाद्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।१।१।३,,

अर्थात् चित्त की वृत्तियों को सब ओर से हटा कर परमेश्वर के समीप लगाने को योग कहते हैं। जैसे जल के प्रवाह को जब एक ओर

से रोक दिया जाता है तो वह नीचे स्थान में जाकर स्थिर होजाता है इसी प्रकार चित्त की वृत्ति जब बाहर से रुकती हैं तब स्वतः परमेश्वर में स्थिर हो जाती हैं उपर्युक्त शास्त्र में योग के निम्न आठ अङ्ग लिखे हैं जिन से मनुष्य परमात्मा को प्राप्त होते हैं।

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधियोगऽष्टावङ्गानि।
यो० । १ । २ । २९ ॥

अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि यह योग के आठ अङ्ग हैं। यद्यपि उपर्युक्त शास्त्र में इन की विस्तृत व्याख्या की गई है परन्तु हम उन का संक्षिप्त भाव उद्धृत करते हैं।

(१) **यम**—सब प्राणियों में प्रीति, सत्य बोलना, चोरी का त्याग, ब्रह्मचर्य्य, विषयों से पृथक् रहना ये पांच यम कहलाते हैं॥

(२) **नियम**—जल और धर्माचरण से शरीर के बाहर और भीतर की शुद्धि करनी, सन्तोष, तप (आत्मा और मन को धर्माचरण से शुद्ध कर लेना) शास्त्रों का पठन पाठन, एवं आत्मा और मन के प्रेम-भाव से आत्मादि सत्य द्रव्यों को ईश्वर के समर्पण करना यह पांच नियम कहलाते हैं।

(३) **आसन**—जिस में सुखपूर्वक शरीर और आत्मा स्थिर हो उसे आसन कहते हैं और वे ८४ प्रकार के होते हैं।

(४) **प्राणायाम**—श्वास,प्रश्वास की गति का रोकना;प्राणायाम कहलाता है इस के नित्य करने से आत्मा का अज्ञान नष्ट होता है और मन एकाग्र होकर ज्ञान का प्रकाश शनैः २ बढ़ता जाता है।

(५) **प्रत्याहार**—जब मनुष्य अपने मनको जीत लेता है तो इन्द्रियां स्वतः वश में हो जाती हैं क्योंकि वे मन के आधीन हैं फिरवह अपने मन को जहां लगाना चाहता है वहीं लग जाता है यही प्रत्याहार कहाता है।

(६) **धारणा**—उस को कहते हैं कि मनको चञ्चलता से छुटा कर नाभि, हृदय, मस्तक, नासिका और जिह्वा के अग्रभाग आदि देशों में स्थिर कर के ओङ्कार का जप और तदर्थ परमेश्वर का विचार करना।

(७) **ध्यान**—धारणा के पश्चात् उसी देश में आश्रय लेने योग्य जो अन्तर्यामी सर्व-व्यापक परमेश्वर है उसके प्रकाश और आनन्द में अत्यन्त

विचार और प्रेम-भक्ति से इसप्रकार प्रवेश करना जैसे समुद्र के बीच नदी प्रवेश करती है। उस समय किसी अन्य पदार्थ का स्मरण भी नहीं होना चाहिये किन्तु उसीके ज्ञानमें मग्न होना चाहिये यही ध्यान कहलाता है।

(८) समाधि—इन सात अङ्गों के फल को समाधि कहते हैं ध्यान और समाधि में इतना अन्तर है कि ध्यान में तो ध्यान करनेवाला, जिस मन से, जिस वस्तु का ध्यान करता है वे तीनों विद्यमान रहते हैं परन्तु समाधि में केवल परमेश्वर के ही आनन्द-स्वरूप-ज्ञान में आत्मा मग्न हो जाता है और वहां तीनों का भेदमात्र नहीं रहता।

अब उपासना विषय में कुछ उपनिषदोंके प्रमाण उद्धृत कियेजाते हैं:—

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः ॥ नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैवमाप्नुयात् ॥ कठो० वल्ली २। २४ ॥

अर्थः—उपासना-योग, दुष्ट-मनुष्य को सिद्ध नहीं होता क्योंकि जब तक मनुष्य दुष्ट कामों से पृथक् होकर अपने मन और आत्मा को शान्त और व्यवहारों को शुद्ध नहीं करता तब तक कितना ही क्यों न पढ़े पढ़ावे परमेश्वर की प्राप्ति नहीं होती।

तपः श्रद्धेये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्ष्यचर्य्यां चरन्तः। सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा ॥ मुण्डक १।२ ११॥

अर्थः—जो मनुष्य धर्माचरण से शुद्ध हृदयरूपी वन में स्थिरता के साथ निवास करते हैं वे परमेश्वर के ही समीप वास करते हैं और जो लोग अधर्म के छोड़ने और धर्म के करने में दृढ़ संन्यास वा किसी अन्य आश्रम में हैं वे प्राणद्वार से परमात्मा को प्राप्त होकर सब दोषों से छूट कर मुक्ति को प्राप्त होते हैं।

परमात्मा की उपासना इस प्रकार करनी उचित है:—

अथ यदिदस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोस्मिन्नन्तराकाशस्तस्मिन्यदन्तस्तदन्वेष्टव्यं तद्वाव विजिज्ञापितव्यमिति ॥ १ ॥ तं चेद्ब्रूयुर्यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशः किं तदत्र विद्यते यदन्वेष्टव्यं यद्वाव विजिज्ञासितव्यमिति ॥ २ ॥ सब्रूयाद्यावान्वा अयमाकाशस्तावपोऽन्तर्हृदय आकाश उभे अस्मिनन्द्यावा पृथिवी अन्तरेव समाहिते उभावग्निश्च वायुश्च सूर्याचन्द्रमसा उभौ विद्युन्नक्षत्राणि

यच्चाप्ये ह्यास्ति यच्च नास्ति सर्वं तदस्मिन् समाहितमिति ॥ ३ ॥

छान्दोग्योपनिषद् प्रपा० ८ खं० १ । २ । ३

अर्थः—कण्ठ के नीचे दोनों स्तनों के बीच और उदर के ऊपर जो हृदय-देश है उस को ब्रह्मपुर वा परमेश्वर का नगर कहते हैं। उस के बीच में जो गर्त्त है उस में कमल के आकार का एक स्थान है उस में सर्वशक्तिमान् परमात्मा बाहर भीतर एकरस होकर भर रहा है। वह आनन्द-स्वरूप परमेश्वर उसी प्रकाशित स्थान के बीच खोज करने से मिल जाता है * दूसरा उस के मिलने का कोई मार्ग नहीं है ॥ १ ॥ और कदाचित् कोई पूछे कि उस हृदयाकाश में क्या रक्खा है जिस का खोज किया जाय तो उत्तर यह है कि हृदय देश में जितना आकाश है वह परमात्मा से भर रहा और उसी हृदयाकाश के मध्य में सूर्य्य आदि प्रकाश तथा पृथिवी लोक, अग्नि, वायु, सूर्य्य, चन्द्र, बिजुली और सब नक्षत्र लोक भी ठहर रहे हैं जितने कि गोचर और अगोचर पदार्थ हैं वे सब उसी की सत्ता के बीच में स्थिर हो रहे हैं।

उपासना भी शास्त्रों में दो प्रकार की लिखी है अर्थात् एक 'सगुण' दूसरी 'निर्गुण'। न्यायी, दयालु, मनीषी, परिभू, स्वयंभू इत्यादि गुणों के सहित होने से परमेश्वर सगुण है और अकाम, अव्रण, अस्नाविर आदि गुणों के निषेध होने से निर्गुण कहाता है।

पुनर्जन्म और मुक्ति

संसार में निर्बल व बलवान्, निर्बुद्धि और धीमान्, मूर्ख तथा विद्वान् और दरिद्र एवं श्रीमान् पुरुषों को देखकर हमें निश्चय होता है कि यह मनुष्य अपने पूर्व-कृत शुभाशुभ कर्मों का ही पाप पुण्य भोग रहे हैं। ईसाई, मुसलमान आदि मतवादियों से (जो पुनर्जन्म को नहीं मानते) जब प्रश्न किया जाता है कि परमात्मा ने जो संसार में अनेक काणे, अन्धे, लूले, लंगड़े

* परमात्मा अति सूक्ष्म होने से इन्द्रियों के विषय नहीं हैं अतएव नेत्रादि पदार्थ उन्हें नहीं देख सक्ते वरञ्च जीवात्मा ही उन का अनुभव कर सक्ता है। वेदादि शास्त्रों में जीवात्मा के रहने का स्थान भी हृदय देश ही लिखा है (और युक्ति से भी यही सिद्ध होता है क्योंकि जब कोई मनुष्य किसी कार्य में अपना उत्तर-दायित्व प्रकट करता है तो दूसरे को निश्चय कराने के लिये वह अपना हाथ किसी अन्य अङ्ग प्रत्यङ्ग के ऊपर न ले जाकर हृदय के ही ऊपर ले जाता है) अतएव उसे अन्य स्थानों में न भटक कर अपने समीप ही परमात्मा का अनुभव करना चाहिये। परमात्मा सर्वत्र एक रस व्यापक हैं और वे सर्वज्ञ हैं इस लिये एकदेशीय जीव जब सर्व-देशीय परमात्मा में प्रवेश करता है तो उसे सब लोकोंका सत्य ज्ञान हो जाता है अतः ऋषि निर्भ्रान्त होते हैं और इसी कारण आर्यों ने आप्तवाक्यों को भी प्रमाण-कोटि में माना है।

मनुष्य उत्पन्न किये हैं इन्होंने उस का क्या बिगाड़ा है ? तो वे इन बातों का कुछ भी उत्तर नहीं दे सकते, अतएव पुनर्जन्म; शास्त्रके अतिरिक्त; युक्ति (दलील) से भी सिद्ध होता है। शास्त्रोंमें बतलाया गया है कि जन्म और मृत्यु के समय मनुष्य को बड़ा कष्ट होता है इसलिये इससे बचने का उपाय करना उचित है। महर्षि गौतमचार्य लिखते हैं कि दुःख से छूट जाने का ही नाम मुक्ति है यथाः—

दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तापाये तदनन्तरापायाद-पवर्गः ॥ न्याय दर्शन १। २२। २॥

अर्थात् दुःख, जन्म, प्रवृत्ति, दोष, मिथ्याज्ञान के उत्तरोत्तर छूट जाने नाम अपवर्ग (मुक्ति) है। अर्थात् जब मनुष्य केमिथ्या-ज्ञान का नाश हो जाता है तब दोष, दोषों के नाश होने पर प्रवृत्ति (विषयादि की वासनायें), प्रवृत्ति के नाश होने पर जन्म, और जन्म के नाश होने पर समस्त दुःख नष्टहोजाते हैं; और यही मुक्ति है॥

उपर्युक्त प्रमाणों से विदित है कि जब तक मनुष्य विषय वास-नाओं को नहीं छोड़ता तब तक वह आवागमन के चक्र से कदापि बाहर नहीं निकल सकता। जिस प्रकार अग्नि के संसर्ग से लोहा उसके गुण धारण कर लेता है इसी प्रकार जब मनुष्य योगाभ्यास द्वारा ईश्वर की उपासना करता है तो उस में निष्पक्षता, पवित्रता और निर्वैरता आदि ईश्वर के गुण प्रवेश करते जाते हैं और विषय-वासनायें कम होती चली जाती हैं। इस प्रकार एक जन्म में नहीं जन्मान्तर में मनुष्य आवागमनसे छूट कर "ते ब्रह्मलोकेषुपरान्तकाले" उपनिषद् वाक्य के अनुसार ब्रह्मा की आयु के परिमाण अर्थात ३६००० कल्पों तक (जैसा कि पूर्व लिख चुके हैं)सुख का आनन्द भोगता है। उस समय जीव शरीरादि के बन्धन में न होने के कारण स्वतंत्र होकर चाहे जिस लोक व स्थान में इच्छानुसार गमन करता है।

शास्त्रों में प्रकृति को सत, जीव को सत्-चित, और परमात्माको सच्चिदानन्द बतलाया गया है और यह उपदेश दिया गया है कि यदि जीव आनन्द प्राप्त करना चाहे तो उसे परमात्मा कीही प्राप्ति करनी उचित है समाधि-अवस्था में जो आनन्द जीवात्मा को मिलता है उपनिषदों में उसे अनिर्वचनीय (वाणी से वर्णन करने के अयोग्य)

कहा है यही कारण था कि बड़े२ सम्राट्, चक्रवर्ती राज्य को छोड़ कर मुक्ति-सुख को प्राप्त करने के लिये कन्द-मूल-फलादि भोजन करतेहुये आरण्यों में नाना कष्ट सहन करते थे।

आर्षग्रन्थोंतथा रामचन्द्र जीके समय कानिर्धारण

जिस प्रकार यूरोप के विद्वानों ने वेदों को गड़रियों के गीतोंका संग्रह और आर्ष-ग्रन्थों को युक्ति-शून्य और असम्भव बातोंका भाण्डार बतलाया है उसी प्रकार उन्होंने उनके समय स्थिर करने में भी भारी पक्षपात से काम लिया है। उनके विचार में अष्टाध्यायी मसीह से ३५० वर्ष पूर्व, मनुस्मृति ५०० वर्ष पूर्व रची गई है वे रामचन्द्र को कृष्ण वा युधिष्ठिरके समकालीन अथवा उनसे ४ पीढ़ी पूर्व उत्पन्न हुआ बतलाते हैं तथा महाभारत युद्ध का मसीह से १००० एक सहस्र वर्ष पूर्व होना निश्चित किया है। अब हम इस के सत्यासत्य की परीक्षा करते हैं।

महाभारत के समकालीन श्रीकृष्ण जी का समय; श्रीमद्भागवत में इस प्रकार लिखा है कि:—

यस्मिन्कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदाऽहनि।
प्रतिपन्नं कलियुगमिति प्राहुः पुराविदः॥
श्रीमद्भागवत द्वादश स्कन्ध अध्याय २ श्लोक ३३॥

अर्थः—जिस दिन श्रीकृष्ण ने शरीर छोड़ा उसी दिनसे कलियुग का आरम्भ हुआ ऐसा प्राचीन विद्वान् कहते हैं।

उपर्युक्त श्लोकसे विस्पष्ट है कि महाभारत को ५००८ वर्षसे ऊपर समय बीता क्योंकि इतना समय तो कलियुग काही आरम्भ हुये वीत चुका है जैसा कि हम पीछे सिद्ध कर चुके हैं।

राज तरङ्गिणी—नामक ग्रन्थ में लिखा है कि कलियुग के ६६३ वर्ष व्यतीत होने पर महाराज युधिष्ठिर ने राज्य पाया परन्तु यह असत्य है क्योंकि बौद्ध और जैनों ने आर्यों के समय का निर्धारण निष्पक्षभाव से नहीं किया है।

१ अष्टाध्यायी- यह प्रसिद्ध है कि महर्षि पाणिनि निर्मित अष्टाध्यायी के सूत्रों पर महर्षि पतञ्जलि ने महाभाष्य रचा है और पतञ्जलि ऋषि के बनाये हुए योगशास्त्र के ऊपर महर्षि व्यास ने [जो महाभारत के समय में विद्यमान थे] वेदान्त दर्शन बनाया है अतएव महर्षि पाणिनि का समय महाभारत से बहुत प्राचीन सिद्ध होता है।

२ षट् शास्त्र १ सांख्य २ वैशेषिक ३ न्याय ४ योग ५ मीमांसा और ६ वेदान्त आर्यों की छै विज्ञान (फ़िलासफ़ी) की पुस्तकें हैंजिन्हें १ कपिल २ कणाद ३ गौतम ४ पतञ्जलि ५ जैमिनि और ६ व्यास, महर्षियों ने रचा

है। उपर्युक्त दर्शनों में सृष्टि के छः कारणों अर्थात् १ प्रकृति २ काल ३ परमाणु ४ पुरुषार्थ ५ कर्म और ६ ब्रह्म की ऐसी विद्वत्ता के साथ व्याख्या की गई है कि आज तक भूमण्डल भर में इन की उपमा की दूसरी पुस्तकें नहीं पाई जातीं। १ सांख्य में लिखा है कि तत्वों के विना मिले कोई कार्य्य नहीं बनता, इस प्रकार २ वैशेषिक में विना समय लगे, ३ न्याय में विना उपादान कारण के, ४ योग में विद्या, ज्ञान और विचार विना किये. ५ मीमांसा में कर्म चेष्टा किये विना और ६ वेदान्त में विना कर्त्ता (बनाने वाले) के प्रत्येक कार्य्य की असिद्धि बतलाई गई है। अतएव छओं शास्त्रों में परस्पर कुछ भी विरोध नहीं है।

इन छः दर्शनों पर ऋषियों के भाष्य इस प्रकार इस समय उपलब्ध होते हैं अर्थात् सांख्य पर भागुरिमुनि का, वैशेषिक पर गौतमऋषि का, न्याय पर वात्सायन मुनि का, योग पर व्यासऋषि का, मीमांसा पर बोधायन और व्यास ऋषि का और वेदान्त पर बोधायन और वात्सायन ऋषि का।

उपर्युक्त भाष्यों के देखने से विदित होता है कि वैशेषिक, न्याय से प्राचीन है, गौतम और रामचन्द्र जी का एक समय है, और कपिल का समय इन दोनों के पूर्व का है। व्यास जी महाभारत के समय में हुए हैं अतएव मीमांसा और योग की रचना उन से पहले की है और बोधायन तथा वात्सायन मुनि का समय व्यास जी के पश्चात् सिद्ध होता है। बहुत से विद्वानों का कथन है कि चाणक्य ऋषि का ही दूसरा नाम वात्सायन है जिन्होंने अपने बुद्धि-वैभव से महानन्द जैसे प्रतापी राजा को नष्ट कर के उस के बेटे चन्द्रगुप्त को राजसिंहासन पर बैठाया था और इस से हम भी सहमत हैं।

(३) रामायण—रामचन्द्रजी की जन्मतिथि वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड सर्ग १७ श्लोक ८.व ९ में इस प्रकार लिखी है।

ततो यज्ञे समाप्ते तु ऋतूनां षट् समत्ययुः। ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ ॥ नक्षत्रेऽदिति दैवत्येस्वोच संस्थेषु पंचसुः। ग्रहेषु कर्कटे लग्ने वाक्पतां विदुनां सह ॥ २ ॥

अर्थः—यज्ञ होने के दिन से छै ऋतु बीत जाने पर बारहवें मास चैत्र शुक्ल की नवमीं तिथि पुनर्वसु नक्षत्र में जब ५ ग्रह उच्चस्थान में पड़े थे और कर्कटलग्न में चन्द्रमा स्थित थे रामचन्द्र को कौसल्या ने उत्पन्न किया।

यद्यपि रामायण के उपर्युक्त श्लोकों से रामचन्द्र के जन्म की तिथियों का ज्ञान होता है परन्तु उन के समय का ठीक निर्धारण नहीं होता। रामचन्द्र जी के समय का महाभारत से कुछ पता चलता है इस के अतिरिक्त और किसी पुस्तक में इन के समय का उल्लेख नहीं है। महाभारत का श्लोक यह है:—

त्रेता द्वापरयोः सन्धौ रामः शस्त्रभृतां वरः।
असकृत पार्थिवं क्षत्रं जघानामर्ष चोदितः॥

महाभारत आ० प० अध्याय २१ श्लो० ३॥

अर्थः—त्रेता व द्वापर की सन्धि में शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ राम हुए जिन्होंने दुष्ट राजाओं को मार कर धर्म का संस्थापन किया।

यदि त्रेता के अन्त में भी रामचन्द्रजी का समय मान लिया जावे तो ५००८ वर्ष कलियुग। ८६४००० वर्ष द्वापर कुल ८६९००८ वर्ष से न्यूनसमय किसी दशा में भी नहीं होता। महाभारत में उपर्युक्त श्लोक विद्यमान होने पर भी जो योरुप के विद्वान् उन्हें महाभारत के समय में उत्पन्न हुआ बतलाते हैं हम तो उन्हें पक्षपाती ही कहते हैं।

(४) **मनुस्मृति**—जिस प्रकार महाभारत, रामायण और ब्राह्मण ग्रन्थों में मनुस्मृति के प्रमाण विद्यमान हैं उस प्रकार मनुस्मृति में उपर्युक्त किन्हीं पुस्तकों का नाम नहीं लिखा अतएव मनुस्मृति वैवस्वत मन्वन्तर की पहली चतुर्युगी के सत्युग में निर्माण हुई है जिसे १२०५३००५ वर्ष होते हैं।

रामायण की पड़ताल

यह संस्कृत-काव्य का एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है जिसे ऋषि वाल्मीक जी ने रचा है। यह पुस्तक बहुत स्थानों में मुद्रित हुई है और हस्त-लिखित भी इस की प्रतियें उपलब्ध होती हैं परन्तु सब में एक दूसरी से कुछ न कुछ न्यूनाधिकता पाई जाती है शैव, शाक्त और वैष्णवों ने इस में बहुत कुछ गड़बड़ कर दिया है परन्तु जहां तक ऐतिहाहिक विषयों का सम्बन्ध है कुछ गड़बड़ नहीं है। वाल्मीकि रामायण के आदि में कोई मनुष्य सूची का बनाने वाला लिखता है कि:—

चतुर्विंशत्सहस्राणि श्लोकानामुक्तवानृषिः।
तथा सर्ग शतान्पञ्च षट् काण्डानितथोत्तरम्॥ बाल० ३। २॥

अर्थात् ऋषि ने २४००० श्लोक, पांच सौ सर्ग, छै काण्ड और उत्तर काण्ड भी रचा।

इस समय जो पुस्तक रामायण का हमारे सम्मुख विद्यमान है उसमें सात काण्डों में ६५६ और बाल से युद्ध काण्ड तकमें अर्थात् छै काण्डों में ५३५ सर्ग उपस्थित हैं। किन्हीं २ पुस्तकों में इससे भी न्यूनाधिक पाये जाते हैं अतएव स्पष्ट है मूल पुस्तक में बड़ा गड़बड़ कर दिया गया है इस के अतिरिक्त उत्तर-काण्ड भी जिस में सीता-वन-वास आदि अनेक निरर्थक बातें भरी पड़ी हैं निश्चय किसी ने पीछे से बनाकर रामायणमें सम्मिलित कर दिया है और हमारे इस कथनकी पुष्टि निम्न युक्ति और प्रमाणोंसे भली भांति हो जाती है:-

(१) 'छै काण्ड तथा उत्तर काण्ड' वाक्य क्यों कहा गयाहै सीधे सात काण्ड क्यों नहीं कह दिये गये।

(२) बाल काण्ड में रामचन्द्र जी का जन्म और युद्ध में उन के युवराजपद भरत को देने तथा अनेक यज्ञ करने का वर्णन है फिर उत्तर को रचने की आवश्यकता ही क्यों पड़ी।

(३) प्रोफ़ेसर ग्रिफ़िथ साहब कहते हैं कि " रामायण ७ काण्डों में विभाजित है परन्तु कविताकी वह विचित्रता छठे काण्ड में ही समाप्त होती है अतएव यह विश्वास योग्य बड़ी भारी युक्ति है कि सातवां काण्ड पीछे किसी की मिलावट है (देखो इनके अंगरेज़ी रामायण की भूमिका)

(४) बङ्गवासी नामक अख़बार आषाढ़ शुक्ल ५ संवत १९६४ के पृष्ठ ३ कालम ७ में बलिद्वीप के विषय में जो जावा के पूर्व एक छोटा सा टापू है इस प्रकार लिखा है " * * * रामायण बाल्मीकि प्रणीत है यह स्वीकार किया जाता है पर राजा केसुम के द्वारा रची हुई रामायण ही देश में प्रचलित है इस रामायण में उत्तरकाण्ड एक दम है ही नहीं और बालकाण्ड के भी अनेक अंश नहीं देख पड़ते * * * "

उपर्युक्त प्रमाणों से प्रकट है कि मूल रामायण में भी बहुत कुछ न्यूनाधिकता करदी गई है और सातवां काण्ड तो किसी ने पीछे से ही बना कर लगा दिया है। इस समय रामायण में निम्न विषय ऐसे पाये जाते हैं जिन में प्रायः मनुष्यों को शङ्का उत्पन्न हुआ करती है:-

वाल्मीकि रामायण के बालकांड में इस समय अनेक उपाख्यान अर्थात् (१) कुशनाभ की कन्याओं का वायु के

द्वारा कुब्जा होना (२) भगीरथ के द्वारा गङ्गा आने के समाचार (३) समुद्र मथन (४) गौतम की स्त्री अहल्या से इन्द्र का व्यभिचार करना इत्यादि पाये जाते हैं जिन में से कुछ ऐतिहासिक हैं और कुछ आर्ष-ग्रन्थों के अलङ्कार परन्तु यह सब ही पीछे मिलाये गये हैं जो सुन कर वा स्मरण से लिखे हुए स्पष्ट प्रतीत होते हैं। वाल्मीकि रामायण में इन्द्र और अहल्या का उपाख्यान इस प्रकार लिखा है कि:-

"एक दिन जब गौतम मुनि स्नानार्थ गये तो चन्द्रमा की सहायता से इन्द्र ने उनकी स्त्री अहल्या से व्यभिचार किया। अहल्या ने जान कर भी यह वृत्तान्त ऋषि से छिपाया इसलिये उन्होंने श्राप देकर अहल्या को पाषाण कर दिया और इन्द्र को सहस्र भग वाला बना दिया। दोनों के प्रार्थना करने पर उन्होंने इन्द्र से कहा कि तेरे भग के स्थान में सहस्र नेत्र हो जायं और अहल्या से कहा कि रामचन्द्र के चरणस्पर्श से तू फिर अपने स्वरूप में आजावेगी।"

अब हम यह देखते हैं आर्षग्रन्थों में इन्द्र, गौतम, अहल्या का अर्थ क्या ग्रहण किया गया है:—

इन्द्रा गच्छेति। गौरावस्कन्दिन्नहल्यायै जारेति। तद्यान्ये वास्य चरणानि तैरेवैन मेतत्प्रमुमोदयिष्याति॥ शतपथ काण्ड ३ प्र० ३ अं० ३ ब्रा०१ कं०१८॥ रेतः सोमः श०३। ३। ५। १॥ रात्रिरादित्यस्यादित्योदयेऽन्तर्धीयते। निरुक्त १२। ११॥ सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्व इत्यपि निगमो भवति सोपि गौरुच्यते॥ नि० २। ६॥ जार आभगः। जार इव भगमादित्योत्र जार उच्यते रात्रेर्जरयिता। निरुक्त ३॥ एष एवेन्द्रो य एष तपति॥१।६।३।१८॥

इनका भावार्थ यह है कि सूर्य का नाम इन्द्र, रात्रि का अहल्या और चन्द्रमा का नाम गौतम है यहां रूपकालङ्कार है जिस प्रकार चन्द्रमा अपनी स्त्री रात्रि के साथ रहकर सब प्राणियों को आनन्द देता है और सूर्य अपने प्रकाश से रात्रि का शृङ्गार नष्ट कर देता है वही उसका जार कहलाता है। गौतम का नाम चन्द्रमा इसलिये है कि वह अति शीघ्रता से चलता है और रात्रि का नाम अहल्या इसलिये है कि उसमें दिन लय हो जाता है।

इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण में सूर्य का नाम प्रजापति और उषा और प्रकाश उसकी दो कन्या लिखी हैं। सूर्य की किरण (वीर्य) जब

उषा के गर्भ में जाकर पड़ती हैं तब दिन की उत्पत्ति होती है इन आर्ष-ग्रन्थों के सत्य अलङ्कारों को वाममार्गियोंने इसी कारण बिगाड़कर रामायण तथा श्रीमद्भागवतादि पुराणोंमें लिख दिया है जिस से ऋषि मुनियों को भी ऐसा ही बतला कर बुरे से बुरे कर्म भी निश्शङ्क किये जावें उसी प्रकार अन्य उपाख्यानों की भी व्यवस्था समझनी चाहिये ।

(२) गृध्र पक्षी का युद्ध करना—आरण्य काण्डमें लिखा है कि जब रामचन्द्र जी पञ्चवटी में पहुंचे तो उन्हें एक अति भयानक और पराक्रमी जटायु नामक गृद्ध मिला जिसने रामचन्द्र जी को बतलाया कि हम तुम्हारे पिता के मित्र हैं। रामचन्द्र जी के पूछने पर उस ने अपनी वंशावली भी वर्णनकी और अपने को प्रजापतियोंके वंशज अरुण जी का पुत्र बतलाया इससे अनुमान होता है कि कदाचित् इस वंश के राजा लोग नाग आदि वंशों की तरह गृध्र वंशी कहलाते हों और यह जटायु राज्य छोड़ कर अपना तीसरा और चौथा आश्रम वन में व्यतीत करने आये हों परन्तु वाल्मीकि रामायण में इस समय इनके विषय में जितने सर्ग वा श्लोक मिलते हैं वे सब पीछेकी मिलावट हैं इसलिये हमने भी उन्हें छोड़ दिया है।

(३) वानरों का मनुष्यवत् सभ्य तथा विद्वान् होना—जिस प्रकार हम आज कल ज़ार रूस को ऋच्छराज(रीछों का राजा),जापानको अहिराज और अपनी गवर्नमेण्टको मृगराज वा ब्रिटिश-केसरी कहते हैं उसी प्रकार प्राचीन समयमें भी जातियें अपने वर्ण, गुण, कर्म और स्वभावानुसार ऋच्छ, वानर, गरुड़, यक्ष, गन्धर्व किन्नर और पिशाच आदि नामों से प्रसिद्ध थीं। रामायण में वानरों का स्वरूप "बालि सकनकप्रभः" तारा पिङ्गाक्षम्" आदि वर्णन किया गया है जो सुश्रुत में लिखे हुए निम्न "वारुणकाय" भेदके मनुष्यों में स्पष्ट घटता है:—

शीतसेवा सहिष्णुत्वं पैङ्गल्यं हरिकेशता ।
प्रियवादित्वमित्येतद्वारुण्यं काय लक्षणम् ॥ शारीरस्थान ॥

अर्थ—पर्वतादि शीत प्रधान देशों में रहने तथा पराई बातों को सहने की जिनमें शक्ति हो, जिनका रंग पीला, केश भूरे तथा वचन प्रिय हों ऐसे मनुष्यों को वारुणकाय कहते हैं।

जिस समय रामचन्द्र जी ऋष्यमूक पर्वत के समीप पहुंचे तो सुग्रीव ने उन्हें बालि का भेजा हुआ समझ कर बड़ा भय किया था तब हनुमान् जी ने उन्हें समझाया था कि:-

अहो शाखामृगत्वं ते व्यक्तमेव प्लवंगम ।
लघुचित्त तयात्मानं नस्थापयसि यो मतौ ॥ कि० २ । १७ ॥

अर्थः-हे सुग्रीव ! इस समय आप बुद्धिमानी से काम नहीं लेते और भय से छोटा चित्त कर रहे हो ॥ इससे तो आपका शाखामृगत्व (वानरत्व) सिद्ध होता है ।

उपर्युक्त श्लोक से स्पष्ट विदित है कि यदि सुग्रीव वास्तविक वानर होते तो हनुमान् जी यह वाक्य कदापि न कहते। इसके अतिरिक्त जब हनुमान् जी ने रामचन्द्र जी से वार्त्तालाप किया तो उन्होंने लक्ष्मण जी से कहा था कि:—

नानृग्वेद विनीतस्य ना यजुर्वेदधारिणः ना सामवेद विदुषः शक्यमेवं विभाषितुम् ॥१॥ न्यूनं व्याकरणं कृत्स्न मनेन वहुधा श्रुतम् । अबहुव्याहरतानेन न किञ्चिदशब्दितम् ॥२॥ कि० ३ । २७—२८ ॥

अर्थः-हे लक्ष्मण हनुमान् ने जैसी वार्त्ता की है वैसी ऋगादि चारों वेदों का न पढ़ने वाला मनुष्य कदापि नहीं कर सक्ता है ॥१॥ इन्हों ने व्याकरण भी अच्छी तरह पढ़ा है क्योंकि ये बहुत देर से बोल रहे हैं परन्तु कोई अपशब्द नहीं कहा ।

उपर्युक्त प्रमाणों से विदित है कि हनुमान् आदि मनुष्य थे क्योंकि पशु जाति विद्वान् और ऐसी सभ्य कदापि नहीं होसक्ती। और फलाहार करने तथा उछलने कूदने में अभ्यस्त होने के कारण वानर, प्लवंगम आदि नामों से पुकारे जाते थे ।

(४) रावण के दश शिर और बीस हाथ होना-वाल्मीकि रामायण के अनेक स्थलों में रावण के १० शिर और २० हाथ लिखे हैं परन्तु हम ऐसे श्लोकों को इस लिये प्रक्षिप्त समझते हैं कि उक्त पुस्तक में ही अनेक स्थानों में रावण का एक शिर और दो हाथ सृष्टि नियम के अनुकूल लिखे हुए पाए जाते हैं। यह ध्यान रखना चाहिये कि संस्कृत में एक के लिये एक वचन, दो के लिये द्विवचन और तीन वा तीन से अधिक के लिए बहुवचन का प्रयोग होता है अब हम

रामायण के ही ऐसे प्रमाण उद्धृत करते हैं जिन में रावण के शिर के लिये एक वचन और हाथों के लिये द्विवचन का प्रयोग किया गया है। यथाः—

संवृत्तौ परिघाकारौ वृत्तौ करि करोमपौ। विक्षिप्तौ शयने शुभ्रे पञ्च-शीर्षा विवोरगौ॥ सुन्दर काण्ड १०। १८॥

अर्थ—हनुमान् जी ने सीता को ढूंढते समय रावण के शयनागार में जाकर देखा कि रावण की भुजायें हाथी की सूंड़ के समान गोल पांच मुख के दो सर्पों के समान शय्या पर पड़ी हैं।

उत्क्षिप्य च भुजौ काचिद् भूमौ सुपरिवर्त्तते। हतस्य वदनं दृष्ट्वा काचिन्मोह मुपागमत्। काचिदं के शिरः कृत्वा रुरोद मुखमीक्षती * * *॥
युद्ध काण्ड १११। ८—९

अर्थः—जब रावण मरगया तो उसकी स्त्रियें आकर उसके ऊपर गिर पड़ीं उन में से कोई अपने हाथ फैला कर पृथ्वी पर लोटने लगी कोई उसका मुख देख कर मोहित होगई। कोई अङ्क में उसका शिर धर मुख देख २ कर रोने लगी।

इन के अतिरिक्त अन्य बहुत से स्थानों में रावण के शिर के लिये एक वचन और बाहुओं के लिये द्विवचन; आया है परन्तु वे सब प्रमाण विस्तारभय से यहां नहीं लिखे जाते। ऐसा अनुमान होता है कि प्राचीन समय में रावण असाधारण बुद्धिमान् होने के कारण १० शिरों वाला तथा बलवान् और पराक्रमी होने के कारण २० हाथों वाला कहा जाता होगा। अन्धकार के समय में वास्तविक तात्पर्य न समझ कर यह गड़बड़ करदी गई है।

(५) लङ्का स्थान का निर्णय—यद्यपि सम्प्रति सीलोन (सिंहलद्वीप) को लङ्का माना जाता है परन्तु भारत और सीलोन के मध्य सागर का विस्तार ३० कोस के लग भग है हालांकि रामायण में ४०० कोश वर्णन किया गया है। ज्योतिष ग्रन्थों में सीलोन को लङ्का नहीं माना है जैसा कि निम्न श्लोक से विदित होगा।

याम्यायां भारतवर्षे लङ्का तस्मिन्महापुरी। पश्चिमे केतुमालाख्ये रोमकाख्या प्रकीर्तिता॥ सूर्य्यसिद्धान्त अ० १२ श्लोक ३९ ॥

अर्थः—उत्तरीय भवृत्त (पूर्वीय गोलार्द्ध) के चतुर्थांश योजन के अन्तर पर दक्षिण में भारतवर्ष देश है और उत्तरीय भूवृत्त)

के मध्य में लङ्का नामक महापुरी है। तथा चतुर्थांश-योजन-परिमाण-व्यवधान में पश्चिम की ओर केतुमालवर्ष है जिस में रोमक नामक एक अति प्रसिद्ध नगरी है।

उपर्युक्त प्रमाण से लङ्का का उत्तरीय भूवृत्त के ठीक मध्य में होना सिद्ध होता है और ऐसा ही सिद्धान्तशिरोमणि में लिखा है। यथाः–

यल्लङ्कोज्जयिनीपुरोपरि कुरुक्षेत्रादि देशान् स्पृशत्।
सूत्रं मेरु गतं बुधैर्निगदिता सा मध्यरेखा भुवः ॥ मध्यगतिवासना०२४ ॥

अर्थ.–जो सूत्र (रेखा) लङ्का से उज्जयिनी नगरी के ऊपर होती हुई और कुरुक्षेत्रादि देशों को स्पर्श करती हुई मेरुपर्यंत सीधी चली जाती है वही भूमि की मध्य रेखा है। और ऐसा ही आर्य्य-भटीय* नामक ग्रन्थ में भी लिखा है।

स्थलजलमध्यल्लङ्का भूकक्षाया भवेच्चतुर्भागे।
उज्जयिनीलङ्कायास्तच्चतुरंशे समोत्तरतः ॥ तृतीय पाद श्लोक १४॥

अर्थः-स्थल तथा जल मध्य से भूकक्षा के चतुर्थ भाग अन्तर पर लङ्का है और भूकक्षा के चतुर्थ अंश के चौथे भाग अर्थात् १६ अंश पर उज्जयिनी नगरी है–

निदान उपर्युक्त प्रमाणों से सिद्ध है कि सीलोन (सिंहलद्वीप) लङ्का नहीं है क्योंकि वह भूमध्य रेखा से ५ अंश पूर्व के पार्श्व की ओर हटी हुई है। वास्तविक लङ्का सिंहलद्वीप के पश्चिम और दक्षिण कोण में उत्तरीय भूवृत्त के मध्य में विद्यमान थी जहां कि इस समय महागम्भीर वरुणालय* दृष्टि पड़ता है।

अब केवल एक शङ्का शेष रहजाती है और वह यह है कि पुल का रुख़ सीधा सिंहल द्वीप की ओर जाता है और रामेश्वर से सीलोन

---

* यह ग्रन्थ पं० आर्य भट जी कुसमपुर (पटना) निवासी ने शाके ४२३ में रचा है इस में भूगोल खगोल विद्या का सुपूर्णरीत्या वर्णन होंने के अतिरिक्त अंक गणित, बीज गणित, समस्त क्षेत्रों का फल लाना, व्यासार्द्ध तुल्यजा का ज्ञान, वृत्त की परिधि का प्रमाण, जीवा की परिकल्पना विधि, गीतिकोक्त खण्डज्याओं के लाने का उपाय आदि २ गणित के समस्त विषय ऐसी उत्तमता से सिद्ध किये गये हैं कि जो देखने से ही सम्बन्ध रखते हैं।

* इस परिवर्त्तन-शील संसार में अनेक नवीन द्वीप बनते और पुराने नष्ट होते रहते हैं। अरब के मरुस्थान (रेगिस्तान) और हिमालय के उच्च शिखरों पर अनेक जलचरों की अस्थियें, घोंघे आदि चिह्न इस समय पाये जाते हैं जिन्हें देखकर विद्वान् पुरुष अनुमान करते हैं कि यह स्थान तथा ऊंचे २ पर्वत किसी समय महासागर के गर्भ में छिपे हुए थे। हाल ही में बंगाल की खाड़ी में चिद्दा द्वीप के उस पश्चिमीय कोण में (जो ब्रह्मा के अरैनक कुरवारे के पास है। ता० १६। ७। १९०७ के आर्यमित्र नामक समाचार पत्र में) एक नवीन द्वीप के निर्माण होने की विचित्र खबर लिखी हुई है।

तक बराबर पुल के चिह्न मिलते हैं? परन्तु इसका समाधान यह है कि सम्भव है कि सिंहल द्वीप तक पुल बनाकर वहां से लङ्का के ओर ले गये हों और ऐसा करने की उन्हें इस लिये आवश्यकता पड़ी हो कि समुद्र में पुल को विश्राम देने वाले पर्वत आदि उस मार्ग से जाते हुए समुद्र के गर्भ में अधिक पाये गये हों निदान यह बात यात रैलवे-लइनों को देखने से भली भांति समझ में आसक्ती है कि वे कितनी घूम फिर कर स्थान विशेष तक पहुंचती हैं।

आर्यों की अवनति

इस परिवर्त्तन-शील-संसार में हम किसी वस्तु को एक दशा में स्थित नहीं पाते। जिस प्रकार दिन के पश्चात् रात्रि और रात्रि के पश्चात् दिन का प्रादुर्भाव होता है और जन्म के पश्चात् मृत्यु और मृत्यु के पश्चात् पुनः जन्म ग्रहण करना पड़ता है ठीक इसी प्रकार अनेक जातियें धर्म के आश्रित होकर उन्नति के सोपान पर चढ़ती और अधर्म में आसक्त होकर नीचे को पतित होती रहती हैं। शास्त्रकारों ने धर्म को प्रज्वलित अग्नि की उपमा दी है कि उसे चाहे जितना नीचे को गिराया जावे उस की शिखा सतत उर्द्ध्व मार्ग में गमन करती है और इस के प्रतिकूल अधर्म को पार्थिव-द्रव्यों के रूपक में वर्णन किया है कि वे चाहे जितने ऊपर को उछाले जावें अन्तिम पृथ्वी पर आही गिरते हैं। निदान जब आर्य्य जाति ने ईर्ष्यारूपी वारुणी का पान करना आरम्भ कर दिया तो उस के भयङ्कर दुष्परिणाम; इस के अतिरिक्त और किस जाति को उठाने पड़ते? सती, साध्वी और पतिव्रता द्रौपदी को सभा में नग्न करने का सर्वथा अनुचित कर्म कौरवों के विनाश का ही हेतु नहीं हुआ, वरञ्च उस का फल आर्य्य-जाति अब तक भोग रही है।

यद्यपि भारतवर्षरूपी सुदृढ़ दुर्ग उत्तर में हिमालय जैसे विशाल पर्वत और पूर्व, पश्चिम एवं दक्षिण में अति गम्भीर महासागर रूपी परिखा से संरक्षित था तथा इस कोट के रक्षक (भारतवासी) भी उस समय अति बलवान् तथा युद्धविद्या में ऐसे कुशल थे कि भूमण्डल भर की जातियें इन का लोहा मान रही थीं परन्तु उस समय के परम-विद्वान्, नीति-विद्या-विशारद और दूरदर्शी महात्मा श्रीकृष्ण के ऊपर जब पश्चिमीय समुद्र के मार्ग से होकर कालयवन चढ़ आया तो उन्हें

आर्यावर्त्त में रागद्वेष और विदेशियों में ऐक्यभाव की वृद्धि देख कर देश-रक्षा की बड़ी भारी चिन्ता हुई, उन्होंने दोनों ओर की सेनाओं का संहार विना किये ही युक्ति से कालयवन को यहां नष्ट कर डाला और आर्यावर्त्त को भावी आपत्तियों से बचाने के लिये केवल तीन बातों को निश्चय किया, अर्थात् एक तो परस्पर युद्ध कर के अपनी शक्ति को न घटाया जावे, दूसरे विदेशियों का मार्ग पश्चिमी सीमा पर ही रोक दिया जावे और तीसरे भारत के नरेशों में जो परस्पर ईर्षा, द्वेष उत्पन्न हो रहा है उसे किसी प्रकार दूर करके इन में से किसी योग्य और धर्मात्मा पुरुष को भारत का सम्राट् बना दिया जावे जिस से इन की शक्ति बिखरी न रहे और एक ओर लग कर गुरुतर बन जावे। निदान अपने प्रबल शत्रु जरासन्ध से लड़ कर भारतीय शक्ति का ह्रास न करने तथा सिन्धु नदी की ओर से आये हुए यवनों का मार्ग अवरुद्ध करने के लिये उन्होंने मथुरा परित्यक्त कर के द्वारिका बसाई और अपने तीसरे मन्तव्य को पूर्ण करने के लिये महाराज युधिष्ठिर को भारत का सम्राट् बनाना निश्चय किया। यद्यपि उन्होंने विना युद्ध के महाराज युधिष्ठिर को सम्राट् बनाने के अनेक उपाय किये परन्तु वे अपनी इस मनष्कामना में सफलीभूत न होसके। निदान महाभारत का युद्ध हुआ और दोनों ओर की बड़ी भारी हानि होकर पाण्डव विजयी और कौरव पराजित होकर नष्ट भ्रष्ट होगये। यद्यपि इस जय के उपलक्ष में महा० युधिष्ठिर को भूमण्डल भर का चक्रवर्त्ती राज्य उपलब्ध हुआ परन्तु असंख्य जनसमूह नष्ट होने से उन्हें यह राज्य श्री अति महँगी पड़ी। इस युद्ध में देश के कला, कौशल, विज्ञान और सामरिक शक्ति का ही ह्रास नहीं हुआ वरञ्च इस से भारत के धार्मिक सिद्धान्तों को भी बड़ा भारी आघात पहुंचा जिस की पूर्त्ति ५००० वर्ष से ऊपर होने पर भी अद्य पर्य्यन्त नहीं हुई है। उपर्युक्त अवधि के भीतर जो २ राष्ट्र-विप्लव हुए उन का वर्णन हम "भारतवर्ष का इतिहास" नामक पुस्तक में कभी आगे करेंगे परन्तु धार्मिक सिद्धान्तों में जो परिवर्त्तन हुए हैं यहां उन का ही संक्षिप्त उल्लेख करते हैं:—

वाममार्ग की उत्पत्ति

महाभारत के युद्ध में जब अनेक विद्वान् और वीर पुरुष काम आये तो आर्यावर्त्त में चहुं ओर अविद्यान्धकार फैल गया। उस समय पुष्कल धन और ऐश्वर्य्य विराजमान था इस लिये मनुष्य विषयी और आलसी बन गये और व्यभिचारादि

निन्दित कर्मों के साथ ही मद्य, मांस का सेवन भी बढ़ता गया। जिस समय ऐसे मनुष्यों के प्रति घृणा प्रकट की गई और उन की कड़ी आलोचनायें हुईं तो उन्होंने वेद तथा ब्राह्मण ग्रन्थों के अश्व, गो आदि शब्दों से वैदिक कर्म सिद्ध करके वेद में मांस की आहुतियें देना भी आरम्भ कर दीं। उन्होंने वेदों को बदनाम कर के मद्य, मांस का सेवन ही आरम्भ नहीं किया प्रत्युत वे वेदों के इन्द्र, अहल्या, प्रजापति और दुहिता आदि शब्दों की खेंच तान कर के वेदों में व्यभिचारादि की शिक्षा का भी उल्लेख बताने लगे और ऋषि मुनियों को बदनाम कर के दूषित से दूषित कर्मों को खुल्लम खुल्ला करना आरम्भ कर दिया और जिन कर्मों को लोक में निन्दित माना जाता था उन्हें मुक्ति का साधन मानलिया जैसा कि निम्न श्लोक से प्रकट होगा।

मद्यं मांसञ्च मीनञ्च मुद्रा मैथुनमेव च
एते पञ्चमकारास्युर्मोक्षदा हि युगे युगे॥

अर्थात्, मद्य, मांस, मछली, मुद्रा और मैथुन, इन पञ्चमकारों का सेवन ही युग २ में मोक्ष का दाता है।

निदान इसी शिक्षा के प्रभाव से आज तंत्र ग्रन्थों में हमें लिखा मिलता है कि:—

मातृयोनिं परित्यज्य विहरेत्सर्वयोनिषु।

अर्थात् केवल एक माता को छोड़ कर भगिनी और पुत्री आदि सब के साथ विहार करना चाहिये।

मनुष्यों की प्रवृत्ति स्वभाव से ही विषयों की ओर आकृष्ट हो जाती है इस लिये महाभारत के पश्चात् यह मत बहुत फैला, दूसरा इस की वृद्धि का यह भी कारण हुआ कि इन धूर्त्त लोगों ने धर्मशास्त्र, ब्राह्मण ग्रन्थ एवं कर्मकाण्ड के अन्य शास्त्रों में भी मांस-विधायक वाक्य मिश्रित कर दिये। निदान वेदों को छोड़ कर कर्मकाण्ड का ऐसा कोई ग्रन्थ इस समय नहीं मिलता जिस में कि मांस का विधान न पाया जावे। इस मत के फैलाने में इन्हों ने एक और भी चाल चली और वह यह कि प्रत्येक मत में मिल कर यह उस के ऊपर अपना रँग चढ़ाने लगे। यथा:—

अन्तः शाक्ता वहिश्शैवः सभामध्ये च वैष्णवाः।
नानारूपधरा कौलाः विचरन्ति महीतले॥

अर्थः-भीतर शाक्त (वामी), बाहर शैव और सभा में वैष्णव

बन जाते हैं इसी प्रकार नानारूप धर कर कौल (वाम मार्गी) लोग पृथ्वी पर विचरते हैं।

निदान इन्हों ने अपनी इस कृपा से भारत वासियों को ही उपकृत नहीं किया वरञ्च अन्य-देश-निवासियों को भी इस अनायास मुक्ति दिलानेवाले लटके से वञ्चित न रक्खा, यही कारण है कि आज हम ईसाइयों की 'होली बैबिल' में भी यह लिखा हुआ पाते हैं कि :–

" नूह ने परमेश्वर के लिये वेदी बनाई और पवित्र पशु और हर एक पवित्र पंछियों में से लिये और होम की भेट उस वेदी पर चढ़ाई और परमेश्वर ने सुगन्ध सूंघा,, तौरेत पर्व ८ आयत २० । २१ ॥

निदान जब वाममार्ग भारत के राजाओं का धर्म होगया तो 'यथा राजा तथा प्रजा' की लोकोक्ति के अनुसार इस मत के अवलम्बियों की संख्या निरन्तर बढ़ती ही चली गई और इस के साथ ही साथ पशुहिंसा, मद्य, मांस और व्यभिचारादि दुष्कर्मों ने मनुष्यों को बहुत ही पतित कर दिया। कुछ कालोपरान्त इन्हें नरमांस के खाने की सूझी और तुरन्त वेदों से इस के पोषक मन्त्र भी पेश कर दिये गये। निदान आज कल इन्हीं वाममार्गियों के आचार्य, सायण और महीधर के वेदार्थों को लेकर ही यूरोप के विद्वान् वेदोंमें इतिहास, पशुहिंसा और व्यभिचारादि के लेख होने का स्वप्न देख रहे हैं।

अब हम वेदों के कोष निघण्टु, निरुक्त और ब्राह्मणग्रन्थों के कुछ प्रमाण उद्धृत करके अपने कथन को समाप्त करते हैं जिन से प्रकट होगा कि वेदों के अश्वमेध, गोमेध आदि शब्दों के सत्य अर्थ क्या हैं–

क्षत्रं वा अश्वः ॥ शतपथ । १३ । १ । २५११ । १७ ॥ राज्यप्रबन्ध और शूरत्व को अश्व कहते हैं।

प्रजा व पश्वा ॥ शतपथ १३ । १ । २ । १४ । २ ॥ पशु और प्रजा दोनों एकार्थवाची हैं।

कतमो यज्ञति पशवः ॥ शतपथ १४ । ९ । ६ । ७ । ७ ॥ यज्ञ का अर्थ पशु और पशु का यज्ञ है।

राष्ट्रं वा अश्वमेधः ॥ शतपथ १३ । १ । ६ । ३ ॥ प्रजा के पालन को अश्वमेध कहते हैं।

गो स्तोतृ नाम ॥ निघण्टु ३ । १६ ॥ गो स्तुति को कहते हैं।
गो पृथिवी नाम ॥ निघण्टु १ । १ ॥ गो पृथिवी को कहते हैं।
मेध यज्ञ नाम ॥ निघण्टु ३ । ७ ॥ मेध यज्ञ को कहते हैं।

निदान प्राचीन ऋषियों का यही सिद्धान्त रहा है कि वेदों में किन्हीं पुरुष विशेषों के इतिहास नहीं लिखे हैं और न वे पशुहिंसा और मांस भक्षण ही की आज्ञा देते हैं जैसा कि महर्षि व्यास ने अपने भारत नामक ग्रन्थ में लिखा है। यथाः–

सुरा मत्स्याः पशोर्मांसं द्विजातीनां वलिस्तथा।
धूर्त्तैः प्रवर्त्तितं ह्येतन्नैतद्वेदेषु कथ्यते ॥ महाभारत शान्तिपर्व २६४ । ६ ॥

अर्थः–मद्य, मछली, पशुमांस और द्विजातियों की बलि यह धूर्त्त लोगों ने चलाई हैं, वेदों में कदापि इनकी आज्ञा नहीं है।

जब वाममार्ग मत भारत में चहुंओर फैल गया तो साथही साथ अनेक कुकर्म, भयङ्कर दुष्परिणामों को लिये हुए इसका साथ देने लगे। सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि गोरखपुर के एक राजा से इन धूर्त्त वामियों ने एक यज्ञ कराया और उसकी प्रिया रानी का घोड़े के साथ समागम कराया गया * जिससे उसका देहान्त होगया। रानी के मरने पर राजा पुत्र को राज्य देकर साधु हो इन धूर्त्तों की खूब पोल खोलने लगा उसी मत की चारवाक और आभाणक नाम से दो शाखायें प्रसिद्ध हुईं और उन्होंने इस प्रकार के श्लोक बना कर इस मत का खंडन करना आरम्भ कर दियाः—

चारवाक मत की उत्पत्ति

न स्वर्गो नाऽपवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः । नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फलदायिकाः ॥१॥ पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति। स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते ॥२॥ स्वर्गस्थिता यदा तृप्तिं गच्छेयुस्तत्र दानतः । प्रासादस्योपरिस्थानामत्र कस्मान्न दीयते ॥३॥ अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनम् । बुद्धिपौरुषहीनानां जीविकेति बृहस्पतिः॥४॥ त्रयो वेदस्य कर्त्तारो भण्ड धूर्त्त निशाचराः जर्फरी तुर्फरीत्यादि पण्डितानां वचः स्मृतम् ॥५॥

अर्थः–स्वर्ग, अपवर्ग, आत्मा, परलोक और वर्णाश्रम का फल देने

* बाल्मीकि रामायण के बालकांड का यज्ञ-प्रकरण बिलकुल प्रक्षिप्त है, उस में रामचन्द्र की माता कौशल्या का भी घोड़े के साथ समागम कराया जाना लिखा है।

वाली क्रिया कोई वस्तु नहीं है ॥ १ ॥ यदि यज्ञ में पशु मर कर स्वर्ग को जाता है तो यजमान अपने पिता को क्यों नहीं मार कर भेज देता ॥ २ ॥ यदि मर्त्यलोक के दान से स्वर्गस्थित पितर तृप्त होते हैं तो छत पर बैठा हुआ पुरुष क्यों नहीं तृप्त होता ॥ ३ ॥ अग्निहोत्र, तीन वेद, तीन दण्ड और भस्म लगाना यह बुद्धि और पौरुष-हीन पुरुषों ने जीविकार्थ ढोंग रचलिये हैं ॥ ४ ॥ वेदों के बनाने वाले भांड़, धूर्त्त और राक्षस हैं और जर्फरी तुर्फरी पंडितों के वचन धूर्तता से भरे हुए हैं।

बौद्ध अथवा जैन मत की उत्पत्ति और उसका काम

यद्यपि चार्वाक मत ने वाममार्ग और उस की शैव * और शाक्त दो शाखाओं का खण्डन किया परन्तु उस की आत्मा आदि न मानने वाली शिक्षा ने मनुष्यों के ऊपर कुछ विशेष प्रभाव नहीं डाला। निदान कलियुग के ५४५ वर्ष बीतने पर 'कपिलवस्तु' के राजा शुद्धोदन के यहां महात्मा 'शाक्य मुनि' वा 'गौतम-बुद्ध' की उत्पत्ति हुई। महात्मा बुद्ध के चित्त पर जगत् की अनित्यता ने इतना प्रभाव जमाया कि वह अपने राज्य को छोड़कर वन में तप करने चले गये। जब उन्हों ने अपने जीवन को अति शुद्ध और पवित्र बना लिया तो वाममार्ग को संसार से शून्य करदेने का उन्होंने बीड़ा उठाया और बौद्ध वा जैन धर्म की बुनियाद डाली तथा निम्न शिक्षाओं का देना आरम्भ किया:—

१—सब मनुष्य एक हैं और जातिभेद झूठे हैं। मोक्षप्राप्ति का उपाय यह है कि हम तृष्णा और विषय वासनाओं से बचे रहें। पवित्रता और धर्मभाव को अपने जीवन में दिखायें। पशुओं का बलिदान न करें और समस्त सृष्टि के साथ मित्रवत् वर्त्तें इत्यादि २ ॥

चारवाक मत देह की उत्पत्ति और नाश के साथ ही जीवात्मा की उत्पत्ति और नाश मानता है, परलोक और पुनर्जन्म नहीं मानता, एक प्रत्यक्ष प्रमाण मानता है परन्तु बौद्ध मत इस के प्रतिकूल जीवात्मा को अनादि, पुनर्जन्म, परलोक और निर्वाण (मुक्ति) एवं प्रत्यक्षादि चारों प्रमाण मानता है शेष बातों में अर्थात् जगत् का कर्त्ता कोई ईश्वर नहीं है, वेद में पशु हिंसा का विधान है इसलिये उन्हें न मानना चाहिये; आदि बातों में दोनों बराबर हैं।

* यह लोग शिव के उपासक होते हैं भस्म लगाते हैं रुद्राक्ष समस्त शरीर में लपेटे रहते हैं।

निदान बौद्धमत की सीधी सादी और पवित्र शिक्षा ने लोगों के चित्तों पर गहरा प्रभाव डाला और कुछ काल के अनन्तर भारत का अधिकांश जन-समुदाय बौद्ध मत में प्रविष्ट होकर ईश्वर और वेदों का विरोधी बन गया।

बहुत से मनुष्यों का कथन है कि महात्मा बुद्ध वास्तव में नास्तिक नहीं थे। यद्यपि तप और योगाभ्यास से उन का जीवन आदर्शनीय और पवित्र होगया था परन्तु वे इतने विद्वान् नहीं थे जो वेदों के सत्य-अर्थ का प्रकाश मनुष्यों को दिखा सक्ते। निदान जब उन्हों ने मांस-भक्षण और पशु-हिंसा का निषेध किया तो उन्हें उत्तर मिला कि यह वैदिक कर्म हैं और जब उन्हों ने वेदों का खण्डन किया तो बतलाया गया कि वेद ईश्वर ने बनाये हैं। सम्भव है कि महात्मा बुद्ध ने वाममार्ग का खण्डन करने के लिये ही ईश्वर के अस्तित्व से इनकार कर दिया हो परन्तु निम्न प्रमाणों से विदित होता है वेदादि सत्य-शास्त्रों की वे बड़ी प्रतिष्ठा करते थेः—

महाशय आर० सी० दत्त "भारत की सभ्यता का इतिहास" नामक पुस्तक में लिखते हैं किः— "बुद्ध मरते समय तक मानता रहा कि मैं केवल प्राचीन और पवित्र धर्म का जो कि ब्राह्मण आदि लोगों में प्रचलित रह चुका है उपदेश दे रहा हूं" पृष्ठ ३८३॥

इसी प्रकार महा बुद्ध के अंगरेज़ी जीवन चरित्र में भी लिखा हुआ हैः—

"बुद्ध ने जब ब्राह्मणों को पशुओं के मांस से हवन करते देखा तो कहा कि तुम यह दुष्ट-कार्य क्यों करते हो इसे छोड़ दो ब्राह्मणों ने कहा कि हमारे बड़े करते थे और शास्त्रानुकूल है तो बुद्ध ने कहा कि वेदों में जीवहिंसा को वर्जित किया है, प्राचीन आर्य ब्राह्मण, क्षत्रियादि मांस नहीं खाते थे जब से क्षत्रिय राजा लोग व्यभिचारी होगये हैं तभी से मांस खाना और मांस का हवन करना प्रचलित हुआ है" इत्यादि—

यह बड़े दुःख और शोक का स्थान है कि महात्मा बुद्ध ने स्वलिखित कोई पुस्तक नहीं छोड़ी इसलिये उन के सिद्धान्त ठीक २ जानना कठिन है परन्तु उनकी मृत्यु के पीछे नास्तिकवाद ने बड़ा भयङ्कर रूप धारण किया, तथा ईश्वर और वेदों के वे लोग भारी

निन्दक बन गये। उस समय, आज कल की भांति, बौद्ध और जैन पृथक् २ दो मत नहीं थे परन्तु एक ही मत के दोनों पर्य्यायवाची शब्द माने जाते थे और ऐसा ही अमरकोष में लिखा मिलता है। राजा शिव-प्रसाद जी सितारे हिन्द भी जो जैन थे लिखते हैं कि:-

"बौद्ध और जैनियों की पुस्तक मिलाने से और पुराने मन्दिर और मूर्त्ति देखने से इस बात में कुछ भी सन्देह बाक़ी नहीं रहता कि किसी समय यह दोनों मत एक थे, थोड़े दिनों से भेद पड़ा है" (देखो भूगोल हस्तामलक भाग पहिला नोट १ पृष्ठ ५०१)

निदान वेद और ईश्वर से विमुख मनुष्यों की जैसी दुर्दशा होनी चाहिये थी इन लोगों की भी वैसी ही दुर्दशा हुई। ईश्वर के स्थान में ये लोग अविद्यावश महात्मा बुद्ध तथा अनेक तीर्थङ्करों की मूर्त्तियें पूजने लगे। तथा और भी अनेक अविद्या की बातें इन में प्रविष्ट होगईं जिन का पूर्ण वृत्तान्त इस मत की पुस्तकें देखने से विदित होता है।

वेदों के उद्धारक सुब्रह्मण्य कुमारिल भट्टाचार्य—

जिस समय भारतवर्ष में चहुंओर बौद्धधर्म फैला तो मनुष्य ईश्वर से विमुख होकर जड़मूर्त्तियों का पूजन करने लगे। उस समय सन्ध्या, अग्निहोत्र आदि वैदिक कर्मों के करने वालों से भारत प्रायः शून्य हो चुका था। काशी, कश्मीर तथा द्रविड़ आदि देशों में वैदिक धर्म के मानने वाले जो२ मनुष्य शेष रह गये थे उनकी संख्या नास्तिकोंकी अपेक्षा बहुत ही थोड़ी रह गई थी। यदि बौद्धों से इतर भारत में किसी दूसरे मत-वादियों की गणना की जाती थी तो वाममार्ग की शाखारूप शैव, शाक्त, पाशुपत, कापालिक आदि वेदविरोधी मत ही दृष्टि पड़ते थे, जो अहर्निश मद्यपान करने और मांस भक्षण करने में निमग्न रहते थे। भैरव के सामने द्विजों के शिर काट कर चढ़ाना ही कर्मकाण्ड की पराकाष्ठा समझी जाती थी। निदान ऐसे भयङ्कर समय में ब्राह्मणों ने फिर वैदिक धर्म के उद्धार का बीड़ा उठाया और एक ब्राह्मण-कुमार पं० कुमारिल नामक ने ब्रह्मचर्य आश्रम के समस्त नियमों को पूर्ण कर के वेद और शास्त्रों के रहस्यों से पूर्ण अभिज्ञ हो अपने जीवन को इस पवित्र काम के लिये अर्पण कर दिया। यह जनश्रुति अब तक चली जाती है कि एक दिन कुमारिल भट्टाचार्य्य किसी राजप्रासाद के

नीचे होकर चले जारहे थे इतने में ही उस राजा की पुत्री के यह वचन उन के कर्णगोचर हुए:-

किं करोमि क्वगच्छामि को वेदानुद्धरिष्यति।

अर्थात् क्या करूं और कहां जाऊं वेदों का अब कौन उद्धार करेगा:-

यह सुनकर कुमारिल तत्काल बोल उठे कि:-

मां चिन्त्य वरारोहे भट्टाचार्योऽस्ति भूतले।

अर्थात हे कुमारी ! कुछ चिन्ता मत कर, भट्टाचार्य्य अभी संसार में जीवित है।

निदान कुमारिल जी ने वेद और आर्षग्रन्थों के सूक्ष्म सिद्धान्तों का प्रचार मनुष्यों में करना आरम्भ कर दिया। यद्यपि कुमारिल असाधारण मेधावी और वेद, शास्त्रों के अद्वितीय पण्डित थे परन्तु वे बौद्धों के ग्रन्थों से भली भांति अभिज्ञता नहीं रखते थे इसी लिये वे वेद शास्त्रों का मण्डन तो भली भांति करते थे परन्तु जैन-ग्रन्थों का खण्डन यथोचित नहीं कर सक्ते थे। अपनी इस न्यूनता को दूर करने के लिये उन्होंने निश्चय किया कि जब तक बौद्ध-ग्रन्थों को गुरुमुख हो कर न पढ़ा जावेगा तब तक इन का खण्डन भली भांति न हो सकेगा। निदान अपनी इस अभिलाषा को पूर्ण करने के लिये वे जैनियों की एक पाठशाला में पहुंचे और कुछ काल के अनन्तर जैन-शास्त्रों से पूर्ण अभिज्ञ हो गये। एक दिन कुमारिल के गुरु ने वेदों पर दोष लगा कर वैदिक धर्म को कुमार्ग सिद्ध किया, कुमारिल इस अपमान को न सह सके, उन का चेहरा क्रोध से सुर्ख हो गया और नेत्रों में पानी भर आया। निदान जैन लोग ताड़ गये कि यह बौद्ध नहीं है वरञ्च किसी ब्राह्मण का लड़का है, और उसी दिन से वे लोग कुमारिल को बध कर देने का उपाय सोचने लगे। एक दिन कुमारिल मन्दिर के एक ऊंचे प्रासाद के ऊपर बैठे कुछ सोच रहे थे कि इन "अहिंसा परमो धर्मः" माननेवाले विचार-शून्य-जैन-मतावलम्बियों ने उन्हें धक्का देकर नीचे गिरा दिया। नीचे गिरते ही कुमारिल के मुख से यह शब्द निकले-"क्या श्रुति अपने शरणागतों के दुःख नहीं काटती यदि वेद प्रमाण हैं तो मैं अवश्य जीता रहूंगा" यह शब्द प्रकट करते हैं कि कुमारिल का वेदों पर कितना गहरा विश्वास था। इस चोट से

उनकी एक आंख बैठगई और इसको भी वे अपने इस कर्म का फल बतलाया करते थे कि मैंने अपने को विना प्रकाश किये बौद्ध दर्शन पढ़े हैं।

इस प्रकार जैन मत के ग्रन्थ पढ़ कर कुमारिल ने वेदप्रचार का काम करना आरम्भ कर दिया और अपने निरन्तर उद्योग से बौद्ध धर्म को एक भारी धक्का लगाया। कुमारिल की विद्वत्ता को सुन कर बौद्धमतानुयायी सुधन्वा राजा ने कुमारिल को अपनी सभा में बुलाया और बड़े आदर के साथ उन्हें विद्वानों में स्थान दिया। एक दिन जब कि राजसभा लगी हुई थी आम के वृक्ष पर से कोयल बोली; कुमारिल ने उस का शब्द सुन कर राजा को इस श्लोक से उपदेश दिया।

मलिनैश्चेन्न सङ्गस्ते नीचैः काक्कुलैः पिक !॥
श्रुतिदूषक निर्ह्रादैः श्लाघनीयस्तदा भवेः॥

अर्थात् हे कोयल! यदि श्रुति (कान) को पीड़ा देने का शब्द करनेवाले मलिन और नीच कौओं से तेरा संसर्ग न हो तब तू प्रशंसनीय हो।

श्रुति; वेद को भी कहते इस लिये कुमारिल ने उपर्युक्त श्लोक में राजा को बौद्धों के साथ संसर्ग न करने का उपदेश दिया। इस श्लोक को सुनते ही जैनमतावलम्बियों के चित्तों पर एक चोट लगी और क्रोध के मारे उन के नेत्रों से खून बरसने लगा। उन्हों ने वैदिक धर्म को अप्रामाणिक सिद्ध करने के लिये कुमारिल पर बड़े २ प्रबल आक्षेप किये परन्तु कुमारिल ने शान्ति के साथ, सब को युक्ति पूर्वक उत्तर दे, उनका मुख बन्द करदिया। कुमारिल के उत्तर सुनकर सब के चित्त पर एक विशेष प्रभाव जम गया। और राजा ने उनका बौद्धों के साथ पुनः एक वृहत्शास्त्रार्थ कराया। इस शास्त्रार्थ में दूर २ के जैन पंडित एकत्रित हुये। निदान यह शास्त्रार्थ कई दिन तक होता रहा। बौद्धों ने जो २ आक्षेप वैदिक धर्म पर किये कुमारिल ने उनका उत्तर युक्तिपूर्वक दिया और उस में बौद्धों को वेदों के सत्यार्थ का न समझने वाला सिद्ध कर दिया। फिर कुमारिल ने बौद्ध मत पर वे/ २ प्रबल आक्षेप किये कि जिन से बौद्ध धर्म दहला उठा और उस की रक्षार्थ विरोधियों से कोई उत्तर न बन आया। इस के पश्चात् राजा ने एक और शास्त्रार्थ कराया और उस में भी कुमारिल को ही विजयलाभ हुआ।

कुमारिल ने शास्त्रार्थों में विजयी होकर जैमिनि मुनि के मीमांसा दर्शन और आश्वलायन गृह्यसूत्रों पर वार्त्तिक लिखे, बहुतसे अलङ्कारों को जो वेद और शास्त्रों में आते हैं विस्पष्ट किया। इन्द्र और अहल्या की कथा का जो महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने अपनी ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में सत्य अर्थ किया है उनसे पहिले कुमारिल इसकी व्याख्या कर गये हैं। वे लिखते हैं किः—

प्रजा पतिस्तावत्प्रजापालनाधिकारात् आदित्य एवोच्यते। सचारुणोदय वेलयामुषसमुद्यन्नभ्येति सा तदागमनादेवोपजायत इति तद् दुहितृत्वेन व्यपदिश्यते। तस्यां चारुण किरणाख्यबीजनिक्षेपात् स्त्रिपुरुषसंयोगवदुपचारः। एवं समस्ततेजाः परमेश्वरत्वनिमित्तेन्द्र शब्द वाच्यः सवितैवाह निलीयमानतया रात्रेरहल्याशब्दवाच्यायाः क्षयात्मक जरणहेतुत्वात् जीर्यस्यस्मादनेनवोदितेनवेत्यहल्याजार इत्युच्यते न परस्त्रीव्यभिचारात्॥

इस का अर्थ हम पहले लिख चुके हैं उस से विशेष कुछ नहीं है॥

कुमारिल का वेद, ईश्वर, पुनर्जन्म आदि वैदिक सिद्धान्तों पर पूरा बिश्वास था। निदान जब वे अपना काम कर चुके तो उन्हों ने छल से जैन शास्त्र पढ़ने का यह प्रायश्चित्त निश्चित किया कि जीवित शरीर को तुषानल (चावलों के छिलके की अग्नि) में जला दिया जावे। निदान वे अपने जीवन का यह अन्तिम दृश्य दिखला कर संसार से सदैव के लिये विदा होगये।

अवैदिक मतों के उच्छेदक स्वामी शङ्कराचार्य्य और उनके मायावाद की शिक्षा

दक्षिण देश के मालावार प्रान्त के पूर्णा-नदी-के तटस्थ कालटी ग्राम में शिवगुरु नामक एक विद्वान् ब्राह्मण के घर एक बालक का जन्म हुआ। माता पिता ने नामकरण संस्कार करके बच्चे का नाम शङ्कर रक्खा, पर शोक कि जिस समय शङ्कर की अवस्था केवल तीन वर्ष की थी शिवगुरु इस असार संसार को छोड़ परलोकवासी होगये। विधवा माता इस बालक की असाधारण चेष्टाओं से जो प्रायःहोनहार बच्चों में पाई जाती हैं आमोद और प्रमोद का अनुभव किया करती थी। यद्यपि शङ्कर के बाल्य काल के वृत्तान्त नहीं मिलते परन्तु हमारा विश्वास है कि वे बहुत मनोहर होंगे। शङ्कर की माता आज कल की स्त्रियों की भांति मूर्खा न थीं, उन्होंने शङ्कर को स्वयं

शिक्षा देनी आरम्भ की और जब उनकी अवस्था ५ वर्ष की हुई तो उपनयन संस्कार करा, हाथ में दण्ड और कमण्डलु दे, ब्रह्मचारी बना उन्हें गुरुकुल में पढ़ने भेजदिया। माता से विदा हो शङ्कर गुरुकुल में पहुंचे और वहां रह कर विद्याध्ययन में अभ्यास करने लगे। शङ्कर की असाधारण मेधा मनुष्यों को आश्चर्य में डालने वाली थी इसी लिये इनके आचार्य्य ने अति सावधानी से इन्हें शिक्षा देनी आरम्भ की जिसका परिणाम यह हुआ कि साधारणतया थोड़े ही समय में अनेक शास्त्रों के सूक्ष्म रहस्य उन्हों ने धारण कर लिये। जब शङ्कर विद्या पढ़ कर गुरुकुल से लौटे तो वैदिक धर्म के उद्धार का उन्हों ने दृढ़ निश्चय कर लिया। समावर्त्तन के पीछे कुछ काल तक स्नातक ब्रह्मचारी रहकर वे विद्यार्थियों को पढ़ाने लगे और उस से जो समय मिलता उसे बौद्ध-धर्म्म के ग्रथों का विचार करने में व्यतीत करते थे। थोड़े ही दिनों में शङ्कर की विद्वत्ता का प्रकाश समस्त मालावार में फैल गया और वहां के राजा ने इन के लिये बुलावा भेजा एवं अपनी सभा का सभ्य बनाने की भी प्रार्थना की। शङ्कर ने इस के उत्तर में राजा को कहला भेजा कि आप अपनी प्रजा के पिता हैं, आपके लिये यह उचित नहीं कि हमें अपने कर्म छोड़ने का उपदेश करें। राजा का मन्त्री यह वक्तृता सुन, उन्हें प्रणाम कर वहां से चल दिया और राजा को समस्त वृत्तान्त जा सुनाया। यह सुन कर राजा के चित्त में शङ्कर की ओर से भारी प्रतिष्ठा जम गई और वह स्वयं शंकर से भेट करने चला आया। शंकर की आयु इस समय १६ वर्ष से अधिक न थी अतैव राजा ने इनकी आयु और विद्या को देख परमाश्चर्य्य किया। शंकर ने बड़े आदरसे राजा को स्वागत कर के कुशलक्षेम पूछी और दोनों एक ही आसन पर बैठ गये। बैठते ही राजा ने दश सहस्र मुहरें और अपने तीन नाटक उनकी भेट किये। शंकर ने नाटक तो ले लिये परन्तु मुहरें फेर दीं और कहा कि एक स्नातक के लिये इनका अपने पास रखना हानि और पाप का कारण है, आप यह धन किसी गृहस्थ को दें जो अपने कुटुम्ब के भरण पोषण में इसे लगा कर आप को आशीर्वाद दे। इस के पश्चात शङ्कर ने उन नाटकों को सुना और उन की बड़ी प्रशंसा की। शोक कि उन

नाटकों का इस समय कुछ पता नहीं चलता। शंकरदिग्विजय से इतना ही मालूम होता है कि यह नाटक अपनी उपमा नहीं रखते थे। देर तक राजा और शंकर परस्पर वार्तालाप करते रहे अन्ततः राजा ने आज्ञा मांगी और शंकर ने आशीर्वाद दिया इस पर राजा ने कहा कि महाराज मेरें सन्तति नहीं होती आप कोई विधान बतावें तब शंकर ने राजा को पुत्रेष्टि यज्ञ का उपदेश कर के बड़े आदर के साथ उसे विदा कर दिया।

शंकर की महती अभिलाषा यह थी संन्यास लेकर बौद्धों को भारत से निकाला जावे परन्तु उन की माता इस के प्रतिकूल उन्हें गृहस्थ बनाने का आग्रह कर रही थीं। निदान शंकर ने माता को समझा बुझा कर उन्हें अपने अनुकूल कर लिया और माता ने इसके उपलक्ष में उन से दो प्रतिज्ञायें लेलीं कि एक तो जब में चाहूं मुझ से मिल जाना दूसरे मेरे मरने पर मेरा अग्निसंस्कार अपने हाथों से करना।

अपनी माता से प्रतिज्ञा कर के शंकर अपने बन्धुओं की ओर प्रवृत्त हुए और उन्हें अपनी माता को सौंप के अन्तिम प्रणाम किया। शंकर की माता उस समय मुक्तकण्ठ से रो रही थी। ऐसे अवसर पर शङ्कर ने बड़े धैर्य्य से अपने आप को वश में रक्खा और बन्धुओं को अभिवादन कर के अपने उद्देश्य की सिद्ध्यर्थ घर से चल निकले। शङ्कर के चले जाने पर अनेक लोग उन्हें कटुवचनों से स्मरण करते थे और कहते थे कि यह नीच पुरुष अपनी माता को छोड़ पाखण्ड-जाल में जा फँसा है।

निदान शंकर, घर से चलकर, ब्रह्मविद्या की प्राप्त्यर्थ, अरण्य में पहुंचे और वहां गोविन्दाचार्य्य नामक प्रसिद्ध योगि-राज के समीप पहुंच कर अपने उद्देश्यों का वर्णन किया। गोविन्दाचार्य्य शंकर के विचारों को सुन अति प्रसन्न हुए और उन्हें संन्यास आश्रम में प्रवेश करा उनका नाम स्वामी शंकराचार्य्य रख दिया। स्वामी शङ्कराचार्य्य वहां कुछ दिन रह करअपने सन्देहों के निवृत्त करने तथा योगाभ्यास और वेदान्त-शास्त्र के पठनपाठन में लगे रहे। जब गोविन्दाचार्य्यने देखा कि शंकर अपने सब सन्देह निवृत्त कर चुके हैं तो उन्हें वैदिक धर्म का प्रचार करने की अनुमति दे दी।

निदान गुरु की आज्ञा पा, उनके चरणों पर शिर धर और उन्हें अभिवादन करके स्वामी शङ्कराचार्य्य जी वैदिक धर्म के प्रचारार्थ काशी की ओर पधारे। वहां कुछ काल की स्थिति के पश्चात् उनकी योग्यता, विद्वत्ता और उदासीनता की धूम चहुंओर फैल गई, और आपने भी वहां के विद्वानों और संन्यासियों के सत्संग से बहुत कुछ लाभ उठाया। उस समय नास्तिक-वाद का प्रवाह बड़े प्रबल आवेग से भारत में बह रहा था। बौद्ध-मत की शिक्षा ने मनुष्यों को ईश्वर से विमुख कर के उनके हृदयस्थल पर जगत् की नित्यता का विश्वास जमा रक्खा था। निदान स्वामी शङ्कराचार्य्य ने निश्चय किया जब तक अद्वैत मत की पुष्टि करके जगत् को मिथ्या सिद्ध न किया जावेगा तब तक बौद्धादि नास्तिक मतों का सामना हम न करसकेंगे, और यह भी आवश्यक है कि अद्वैत मत की पुष्टि में कुछ भाष्य भी विद्यमान हों। इस अभिप्राय को पूर्ण करने के लिये शङ्कर स्वामी ने ऐसे स्थान पर रहना चाहा जहां का जल, वायु उत्तम हो, और काशी की अपेक्षा वह स्थान एकान्त देश में भी स्थित हो। निदान ऐसा स्थान उन्हें बदरीनारायण से बढ़ कर अन्य दृष्टि नहीं आया, अतएव तत्काल उन्होंने व्यास प्रभृति महर्षियों के पवित्र आश्रम बदरीनारायण की ओर प्रस्थान कर दिया। वहां पहुंच कर आपने नये सिरे से उपनिषदों पर विचार किया और फिर वेदान्त सूत्रों, उपनिषदों और महाभारत के एक भाग भगवद्गीता पर अद्वैत मत के पोषक भाष्य लिखे। बदरीनारायण में स्वामी शङ्कराचार्य्य जी का पाशुपत मतावलम्बियों का एक अच्छा शास्त्रार्थ हुआ परन्तु इनकी प्रबल युक्तियों के सामने वे अपने मत को यौक्तिक सिद्ध न कर सके।

इस समय स्वामी शङ्कराचार्य्य जी को अपनी शक्ति और विद्वत्ता पर पूरा भरोसा होगया। कई एक विद्वान् भी आपके साथ काम करने के लिये सम्मिलित होचुके थे। अब उन्होंने अद्वैत मत के प्रचार और वेद-विरुद्ध मतों के ध्वस्त करने का निश्चय कर लिया। इस काम को आरम्भ करने के पहिले उन्होंने उचित समझा कि उन के साथ ऐसे विद्वानों का समूह होजाय जिन्होंने अपनी तपस्या और विद्वत्ता के कारण देश में प्रसिद्धि लाभ की हो। इस समय कुमारिल-

भट्टाचार्य; अपने गुणों से देश में प्रसिद्ध हो रहे थे, निदान शङ्कर स्वामी ने उन्हें अपने उद्देश्य का सहायक बनाना स्थिर किया, और इसी अभिप्राय से वे दक्षिण की ओर प्रस्थित हुए। जिन कुमारिल के प्रयत्न से वैदिक कर्मकाण्ड का देश में पुनः प्रचार हुआ था, जिन कुमारिल के प्रताप से देवताओं को पुनः यज्ञ के भाग मिलने लगे थे, जिन कुमारिल ने वेदों की रक्षार्थ बड़े २ कष्ट सहन किये थे और जो कुमारिल वैदिक धर्म को पुनर्जीवित करने के कारण भट्ट पाद और सुब्रह्मण्य के नाम से विख्यात हो रहे थे; मार्ग में शङ्कर स्वामी ने बड़े शोक के साथ सुना कि वे ही कुमारिल तुषानल में जल रहे हैं।। यह बात सुन कर शङ्कर स्वामी को बड़ा शोक हुआ और उन की समस्त आशायें निराशाओं में परिवर्तित होगईं। इस भयानक समाचार को सुनकर उन्हें मार्ग के परिश्रम का कुछ ध्यान न रहा और वे सीधे उस ओर को प्रस्थित हुए जहां बैठे कुमारिल अपना प्रायश्चित्त कररहे थे। उनके वहां पहुंचते ही तुषों में अग्नि देदी गई थी जो शनैः २ धक २ करके जल रही थी और उस के मध्य वेदों उद्धारक कुमारिल बड़ी शान्ति के साथ बैठे हुए थे। उस समय कुमारिल के मुख पर अद्भुत तेज चमक रहा था और उन की शिष्य और मित्र-मंडली के लोग अग्नि के चहुंओर फूट २ कर रोरहे थे। कुमारिल की इस ईश्वर-निष्ठा एवं पवित्रता को देख शङ्कर स्वामी के जीवन ने एक पलटा खाया और वे कुमारिल को देखकर कहने लगे हे सुब्रह्मण्य! तूने वेदों की मीमांसा की, मनुष्यों को कुमार्ग से हटा सुमार्ग पर लाया, वेदों का उद्धार करना तेरा ही काम था शास्त्रों पर इतनी श्रद्धा तुझ ही में देखी है।

यद्यपि कुमारिल ने शंकर को इससे पूर्व नहीं देखा था परन्तु इन की ख्याति उन के कानों तक पहुंच चुकी थी। जब उन्हों ने देखा कि शंकर स्वामी मेरे पास खड़े हैं वे बड़े प्रसन्न हुए और शिष्यों सहित उन की अति पूजा की। शंकर स्वामी ने कुमारिल को अपना भाष्य दिखाया जिसे देख वे बहुत प्रसन्न हुए और कहा कि जगत् में क्षुद्र पुरुष ईर्षा करते हैं परन्तु बुद्धिमान् इस में नहीं गिरते यदि अनुचित न माना जावे तो कह सक्ता हूं कि मैं अध्यास भाष्य पर आठ सहस्र वार्तिक लिख सक्ता हूं। यद्यपि शंकर स्वामी ने बहुतेरा

चाहा कि कुमारिल अपने विचार को बदल कर उन के सहायक बनें और अनेक भांति उन्हें उत्साह दिलाया परन्तु वे अपने वर्त्तव्य से तनिक भी विचलित न हुए और शान्ति के साथ यही उत्तर दिया कि मुझे धर्म की मर्य्यादा पर स्थिर रहना बड़ा प्यारा है, यह मेरा निर्णय नहीं, अपितु, शास्त्र का निर्णय है और इस का उल्लङ्घन करना मुझे कदापि सह्य नहीं है। यदि आप वैदिक धर्म का प्रचार और बौद्धों को पराजित करना चाहते हैं तो मण्डन मिश्रको अपने साथ मिलायें वह मेरा योग्य शिष्य और सब शास्त्रों का ज्ञाता है वह आप के भाष्य पर उत्तम वार्त्तिक रचेगा। अब जब तक मेरा शरीर भस्म न हो आप मेरे सम्मुख खड़े रहें मुझे आप से बड़ी प्रीति है क्योंकि आप ने वेदों के उद्धार का झण्डा खड़ा किया है।

इतनी वक्तृता के पश्चात् दोनों चुप होगये और तुषाग्नि प्रतिक्षण अधिक तीव्र होती गई। परन्तु कुमारिल धीरभाव से सब को रोते देखते हुए परमात्मा के ध्यान में मग्न थे। उन्हें विश्वास था कि मैंने जीवन के उद्देश्य को पूरा कर लिया है और शाश्वत जीवन की ओर जा रहा हूं। उस समय वे अग्नि को अग्नि नहीं समझते थे किन्तु समझते थे कि दुःख दूर करने वाली माता की गोद में बैठा हूं। निदान उस समय उन की मृत्यु का दृश्य समीपस्थ बहुतसी पवित्रात्माओं विशेष कर स्वा० शङ्कराचार्य्य जी के जीवन को पलटा दे रहा था।

जब कुमारिल का शरीर भस्म हो गया तो शङ्कर स्वामी प्रयाग से माहिष्मती नगरी की ओर प्रस्थित हुए और वहां पहुंच कर मण्डन-मिश्र से शास्त्रार्थ करने की अभिलाषा इस प्रतिज्ञा के साथ प्रकट की कि यदि मेरा पराजय हुआ तो मैं गृहस्थ बनूंगा और तुम पराजित हुए तो गृहस्थ छोड़ कर तुम्हें संन्यासी बनना पड़ेगा। निदान मण्डन मिश्र की परम-विदुषी स्त्री सरस्वती को शास्त्रार्थ का मध्यस्थ बनाया गया और फिर दोनों के मध्य शास्त्रार्थ होने लगा।

शङ्कर स्वामी का मत-ब्रह्म एक ही है वही अविद्या से जगत् रूप प्रतीत होता है जिस प्रकार कि सीप; भ्रान्ति से चान्दी प्रतीत होती है। उस के ज्ञान से प्रपञ्च का लय हो जाता है और स्वात्मा में स्थिति होती है यही मुक्ति है जिस से फिर जन्म नहीं होता।

मण्डन मिश्र का मतः—निर्विशेष ब्रह्म में प्रमाण नहीं हो सक्ते क्योंकि शब्दों की शक्ति कार्य के बोधन करने में है इस लिये सारा कर्म वेद का ही बोधक है और उसी के अनुष्ठान से मुक्ति होती है।

निदान यह शास्त्रार्थ कई दिन तक होता रहा अन्त में स्वामी शंकराचार्य जी का मत प्रबल रहा। पति के पराजित होने पर सरस्वती ने स्वयं शंकर स्वामी से शास्त्रार्थ किया और सत्तरह दिन तक यह शास्त्रार्थ भिन्न २ विषयों पर होता रहा परन्तु अन्तिम स्वामी शंकराचार्य, इस में भी विजयी हुये और सब ने उन की छोटी सी आयु और अगाध पाण्डित्य पर परमाश्चर्य किया।

अब हम मण्डन मिश्र और स्वा० शङ्कराचार्य के कतिपय प्रश्नोत्तरों का सारांश यहां लिखते हैं :—

(मण्डन मिश्र) आप जीव और ईश्वर की एकता बताते हैं इस में कोई प्रमाण दीजिये (शंकर स्वामी) उद्दालक ने श्वेतुकेतु को उपदेश किया है कि हे सोम्य ' तत्त्वमसि * ' अर्थात् तू वह [परमेश्वर] है (मं०मि०) ऐसे वचन केवल जप के लिये हैं उन के जप से पाप दूर होते हैं ये किसी अर्थ की विवत्ता से नहीं बोले गये "जैसे 'हुं' और और ' फट् ' (शं० स्वा०) हुं, फट आदि शब्दों में अर्थ की प्रतीति न होने से इन्हें जपोपयोगी कहा है परन्तु उपनिषद् के इस वचन के अर्थ स्पष्ट हैं फिर यह कैसे जपोपयोगी हो सक्ता है (मं० मि०) तत्त्वमसि शब्द आत्मा की नित्यता प्रकट करता है और आत्मा को नित्य समझने से मनुष्य पारलौकिक कर्मों में तत्पर होता है (शं० स्वा०) कर्मकाण्ड के अर्थवाद तो कर्म का अङ्ग बन सक्ते हैं क्योंकि वे इसी प्रकरण में आये हैं परन्तु जीव और ब्रह्म की एकता के बोधक वचन प्रकार कर्मकाण्ड का अंग बन सक्ते हैं जिनका प्रकरण सर्वथा पृथक् है॥

टिप्पणी—प्रथम तो तत्त्वमसि शब्द वेदवाक्य नहीं, छान्दोग्योपनिषद् का वचन है द्वितीय तत शब्द से ब्रह्म की अनुवृत्ति लेना प्रकरण के विरुद्ध है क्योंकि छान्दोग्योपनिषद् के छठे प्रपाठक में जहां तत्त्वमसि शब्द आया है जीवात्मा का वर्णन है नकि परमात्मा का "स तथा तत्र नादस्तेते तदात्म्यमिदंꣳ सर्वं सत्यंꣳ स आत्मा तत्त्व-

* (तत्) वह (त्वम्) तू (असि) है।

मसि श्वेतकेतो ! " अर्थात् तप्त फरसे के ग्रहण से जो नहीं जलता वही सत्य और सूक्ष्म जीवात्मा हे श्वेतकेतो तू है । यहां शंकर स्वामी ने आत्मा से ब्रह्म का ग्रहण किया है वह प्रकरण के विरुद्ध है इस से पहले मन्त्रों में अनेक दृष्टान्त देकर जीवात्मा को अजर, अमर और परमात्मा से भिन्न सिद्ध किया है जिन्हें आवश्यक्ता हो छान्दोग्य उपनिषद् देखलें ।

इस में एक शङ्का होसक्ती है और वह यह कि ' तत् ' शब्द अव्यय है अतः श्वेतकेतु के लिये सः पुल्लिंग शब्द आना चाहिये था अर्थात् तत्त्वमसि के स्थान में सत्त्वमसि होना चाहिये था।परन्तु जानना चाहिये यहां आत्मा का वर्णन है जो स्त्रि, पुरुष आदि कोई लिङ्ग नहीं वरञ्च अव्यय है अतएव यहां " तत्त्वमसि " शब्द का प्रयोग सर्वथा प्रकरण के अनुकूल और उचित है । मण्डन मिश्र का भी हुं, फट् की तरह तत्त्वमसि को व्यर्थ बताना निरर्थक था इसीलिये स्वा० शंकराचार्य ने उस का खण्डन करदिया ।

(मं०मि०) 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया०+' इस श्रुति से जीव और ईश्वर का भेद सिद्ध होता है (शं० स्वा०) यद्यपि यह मंत्र जीव, ब्रह्म में प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध भेद को प्रकट करता है परन्तु इस का मुख्य अभिप्राय भेद को सिद्ध करना नहीं । वास्तव में यह मंत्र आत्मा को अन्तःकरण से पृथक् बताकर उसका सब प्रकार के भोगों से पृथक् रहना बतलाता है अर्थात् भोगनेवाला अन्तःकरण है और आत्मा उसे देख रहा है (मं० मि०) यदि यह श्रुति जीव, ब्रह्म को प्रकट नहीं करती तो इस का अर्थ यह हुआ कि चेतन जीवात्मा नहीं वरन् जड़ अन्तःकरण भोगता है (शं० स्वा०) जैसे लोहा आग के साथ मिलने से जलाने वाला बन जाता है वैसे ही अन्तः करण भी चेतन के साथ भोक्ता बन जाता है ।

टिप्पणी—यद्यपि मण्डन ने इस मन्त्र को अन्तःकरण और जीव-परक ही मान लिया जैसा कि माधवीय शंकर-दिग्विजय में लिखा है परन्तु हमारी सम्मति में यह दृष्टान्त निर्बल है । यदि अग्नि के संयोग से लौह में दाहक शक्ति उत्पन्न होजाती है तो उसे कोई लोहे का

+ इस श्रुति को पूरी उद्धृत कर, हम इस का अर्थ जीव, ईश्वर और प्रकृति के अनादि प्रकरण में लिख चुके हैं ।

धर्म नहीं कह सक्ता अपितु उस से किसी वस्तु का जलना अग्नि का ही धर्म माना जाता है। द्वितीय यदि परमात्मा के स्थान में जीव को ही साक्षी मान लिया जावे तो कई दोष आते हैं प्रथम तो मन की गति, इन्द्रियों के अन्तर्विकार, सुख, दुःख, इच्छा और द्वेष आदि लक्षण जो जीव के शास्त्रों में लिखे हैं वे जीव में असम्भव हो जायंगे क्योंकि इन्द्रिय आदि जड़पदार्थ जीवात्मा के विषय भोग के साधन हैं वे भोक्ता कदापि नहीं होसक्ते। द्वितीय यदि बुद्धि का, जीव के साथ नित्य सम्बन्ध माना जावे तो शंकर स्वामी की मुक्ति का खण्डन हो जायगा तृतीय उपर्युक्त मन्त्र से आगे श्वेताश्वतर में "समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नो०" मन्त्र में जीवात्मा का वर्णन आया है अतएव अन्तःकरण को भोक्ता मानना प्रकरण के भी विरुद्ध होगा।

उपर्युक्त प्रश्नोत्तरों से प्रकट है कि मण्डन मिश्र ने या तो छान्दोग्य उपनिषद् को विचारा नहीं था या माधवाचार्य्य जी ने जो अद्वैत वादी थे मण्डन की प्रबल युक्तियों का सङ्ग्रह नहीं किया है। अब हम नवीन वेदान्तियों के प्रश्न तथा महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के उत्तरों का कुछ अंश सत्यार्थ प्रकाश से यहां उद्धृत करते हैं।

(प्रश्न) मुक्ति किस को प्राप्त नहीं होती (उत्तर) जो बद्ध है (प्र०) बद्ध कौन है (उ०) अज्ञान में फंसा जीव (प्र०) बन्ध, मोक्ष स्वभाव से होता है? (उ०) निमित्त से, यदि स्वभाव से हो तो बन्ध और मुक्ति की कभी निवृत्ति न हो (प्र०) जीव ब्रह्म होने से न आवरण में आता न जन्म लेता न बन्ध है और न कभी इसकी मुक्ति है (उ०) यह नवीन वेदान्तियों का कथन सत्य नहीं जीव का स्वरूप अल्प होने से आवरण में आता, शरीर के साथ प्रकट होने रूप जन्म लेता, कर्मों के फल भोग रूप बन्धन में फंसता और उससे छूट कर मुक्तिसुख भी भोगता है (प्र०) यह सब धर्म देह और अन्तःकरण के हैं जीव तो पाप पुण्य से रहित साक्षिमात्र है (उ०) देह और अन्तःकरण जड़ हैं उन्हें शीतोष्णप्राप्ति और भोग नहीं हैं, जो चेतन प्राणी, उन्हें स्पर्श करता है उसी को शीतोष्ण का भान होता है वैसे ही प्राण भी जड़ हैं उन्हें क्षुधा पिपासा नहीं लगती किन्तु प्राण वाले जीव को लगती है (प्र०) जीव ब्रह्म का प्रतिबिम्ब है जैसे दर्पण के टूटने से जीव की

हानि नहीं होती इसी प्रकार अन्तःकरण में ब्रह्म का प्रतिविम्ब जीव जब तक है तब तक वह अन्तःकरणोपाधि है जब अन्तकरण नष्ट होगया तब जीव मुक्त है। (उ०) प्रतिविम्ब साकार का साकार में होता है ब्रह्म निराकार है उसका प्रतिविम्ब नहीं होसक्ता (प्र०) जैसे स्वच्छ जल में निराकार आकाश का आभास पड़ता है वैसे ही स्वच्छ अन्तःकरण में परमात्मा का आभास जीव है। (उ०) यह वाल बुद्धि का मिथ्या प्रलाप है। जब आकाश से स्थूल वायु को नहीं देखा जासक्ता तब निराकार आकाश कैसे देखा जासक्ता है (प्र०) तो यह नीला और धुंधला जो दीखता है आकाश नहीं है (उ०) नहीं यह पृथ्वी, जल और अग्नि के त्रसरेणु हैं इसमें नीला जल और धुंधला पन पृथ्वी से उड़ी हुई धूलि है।

इस के आगे स्वमी जी नवीन वेदान्तपर इस प्रकार शंका करते हैं (प्रश्न) जीव किस को कहते हो (नवीन) अन्तःकरणावच्छिन्न चेतन को (प्र०) अन्त करणावच्छिन्न दूसरा है वा वही ब्रह्म (नवीन) वही ब्रह्म है (प्र०) तो क्या ब्रह्म ही ने अपने में झूंठी कल्पना करली (नवीन) हो, ब्रह्म की इस से क्या हानि (प्र०) जो मिथ्या कल्पना करता है क्या वह झूंठा नहीं (नवीन) नहीं मन वाणी में कथित वा कल्पित सब झूंठी है (प्र०) फिर मन वाणी से झूठी कल्पना करने और मिथ्या बोलने वाला ब्रह्म कल्पित और मिथ्यावादी हुआ या नहीं ? वाहरे झूंठे वेदान्तियो ! तुमने सत्यस्वरूप, सत्यकाम और सत्यसंकल्प परमात्मा को मिथ्याचारी कर दिया, क्या यह तुम्हारी दुर्गति का कारण नहीं है ? इत्यादि २॥

निदान कुछ ही कारण हो, स्वामी शंकराचार्य ने मण्डनमिश्र को जीत कर, उन्हें सन्न्यासी बना, उन का नाम सुरेश्वराचार्य रख दिया। इस शास्त्रार्थ में विजय पाने से शंकर स्वामी की प्रसिद्धि समस्त आर्यावर्त्त में फैल गई। जब शंकर स्वामी के साथ काम करने के लिये कई विद्वान् एकत्रित होगये तो उन्हों ने नियमानुसार कार्य करना आरम्भ किया और उज्जैन नगरी में राजा सुधन्वा के पास (जिसे कुमारिल ने वेदमत का प्रेमी बनादिया था) पधारे। यहां आकर उन का फिर जैन मतवालों से एक बड़ा भारी शास्त्रार्थ हुआ। स्वा०

शङ्कराचार्य जी का सिद्धान्त ईश्वर और वेद मत का स्थापन करने के अतिरिक्त परमात्मा को जगत् का कर्त्ता सिद्ध करना था इस के विपरीत जैनियों का सिद्धान्त था कि सृष्टि का कर्त्ता अनादि ईश्वर कोई नहीं है, यह जगत् और जीव केवल दो ही अनादि हैं इन दोनों की उत्पत्ति और नाश कभी नहीं होता। इस के अतिरिक्त एक पक्ष दूसरे मत का खण्डन भी करता था यह शास्त्रार्थ कई दिन तक होता रहा अन्त में जैनियों की बड़ी भारी पराजय प्राप्त हुई। इस के पश्चात् राजा सुधन्वा ने वेद मत स्वीकार कर लिया और अपने अन्य इष्ट मित्र राजाओं को लिख कर शास्त्रार्थ कराये जिन में स्वा० शङ्कराचार्य्य को बराबर विजय प्राप्त होता चला गया। उस समय से सब के यज्ञोपवीत होने लगे और प्रति दिन इतने पतित शुद्ध होते थे कि विशेष विधि के साथ प्रायश्चित्त न होकर केवल शङ्खध्वनि की जाती थी और जिन २ के कान में वह ध्वनि पड़ती थी वे उसी समय से अपने को वैदिक धर्मानुयायी समझने लगते थे। स्वामी शङ्कराचार्य्य ने उस समय जैनमन्दिरों में जितनी मूर्त्तियां पाईं तुड़वा २ कर सब को फिंकवा दिया परन्तु विशाल जैनमन्दिरों को, उन में वैदिक पाठशालायें खोलने के अभिप्राय से कोई आघात न पहुंचाया गया। निदान सुधन्वादि राजाओं ने शङ्कर स्वामी के सर्वत्र आर्यावर्त्त में घूमने का प्रबन्ध कर दिया और उन की रक्षार्थ नौकर चाकर भी रख दिये। वहां से चल और रामेश्वर में पहुंच कर उन्हों ने शाक्त-मत का खण्डन किया और बहुत से मनुष्यों को वैदिक धर्मी बनाया, फिर पाण्ड्य, चौल और द्रविड़ देशों में प्रचार करते हुए हस्ती पर्वत पर काञ्ची नगरी में पहुंचे और वहां एक मठ स्थापन किया। इसी प्रकार आन्ध्रदेशों में प्रचार करते और वेङ्कटाचल से होते हुये विदर्भ (विहार) की राजधानी में पहुंचे, यहां आप के शिष्यों ने भैरव मत का बड़े ज़ोर शोर के साथ खण्डन किया यहां से आप का विचार कर्णाटक जाने का हुआ परन्तु विदर्भ के राजा ने वहां जाने से रोका और कहा कि उस जगह कापालिक लोग अधिकता से रहते हैं और वे वेदों के बड़े विरोधी हैं परन्तु सुधन्वा ने इस की कुछ अपेक्षा न कर के कहा कि आप मेरी विद्यमानता में सब जगह

वैदिक धर्म का प्रचार कर सक्ते हैं। निदान वे अपने विचारों से विचलित न होकर सीधे कर्णाटक की ओर चल दिये। इन के वहां पहुंचते ही कापालिकों में एक प्रकार की खलबली मच गई। एक दिन कापालिकों का गुरु क्रकच नामक भस्म रमाये तथा हाथ में मनुष्य की खोपड़ी और त्रिशूल लिये बहुत से शिष्यों के साथ स्वा० शंकराचार्य्य जी के पास आया और उन्हें सम्बोधन कर के कहने लगा कि जो भस्म तूने रमाया है वह तो ठीक है परन्तु पवित्र खोपड़ी छोड़ कर अपवित्र कमण्डलु क्यों पकड़ा है और तू भैरव की उपासना क्यों नहीं करता जब तक मनुष्य नर कपाल को रुधिर से भर कर मद्य से भैरव की पूजा नहीं करता, वे प्रसन्न नहीं होते। राजा सुधन्वा ने उस की यह असभ्यता देख तत्काल नौकरों को आज्ञा दे उसे सभा से निकलवा दिया। इस पर क्रकच को बड़ा क्रोध आया उसकी आंखें लाल हो गईं और अपनी कुल्हाड़ी उठा उसने प्रतिज्ञा की कि यदि मैं तुम्हारे शिरों को इस कुठार से न काट डालूं तो मेरा नाम क्रकच नहीं, यह कहकर वह चला गया और थोड़ी देर पीछे बहुत से अनुयायियों को सन्नद्ध करके शंकराचार्य्य से लड़ने ले आया। यह सारे पुरुष मद्य पिये और भैरव की जय मनाते हुए चले आरहे थे। राजा सुधन्वा ने उन्हें आते ही अपने सैनिकों को लड़ने की आज्ञा दी, इधर क्रकच ने बहुत से शिष्यों को राजा सुधन्वा की सेना के आगे कर के दूसरी ओर से शंकर स्वामी के ऊपर आक्रमण कर दिया। स्वा० शंकराचार्य्य जी के प्राण उस समय संकट में पड़ गये थे परन्तु उन्होंने दिखा दिया कि वे न केवल शास्त्रार्थ, वरञ्च शस्त्रार्थ करने में भी विरोधियों को पराजित कर सकते हैं। इस समय स्वा० शंकराचार्य्य ने मानों विप्र द्रोणाचार्य्य का रूप धारण कर रक्खा था और आपने कुछकाल में ही बाहुबल से लगभग समस्त कापालिकों को मृत और आहत कर दिया। निदाम क्रकच इस लड़ाई में काम आया और उस के पश्चात् पद्मपादादि शंकर स्वामी के शिष्यों ने कापालिक मत का बड़े ज़ोर शोर से खण्डन करना आरम्भ कर दिया। उन के उपदेशों से बहुत से कापालिक शुद्ध हुए और उन के उपनयन आदि संस्कार कराये गये तथा पञ्च महायज्ञों के करने का उपदेश किया गया। यहां से वे पश्चिम की ओर चलेगये और वहां गोकर्ण स्थान पर नीलकण्ठ नामक विद्वान्

से जो शैवमतानुयायी था शास्त्रार्थ कर के उसे अपने मत का अनुयायी बनाया। वहां से सुराष्ट्र आदि देशों में प्रचार करते द्वारिका में पहुंचे वहां आप के शिष्यों ने पञ्चरात्रों के मत का बड़ा खण्डन किया फिर वैष्णव, शैव, शाक्त और सौर आदि मतों का खण्डन करते वे उज्जैन में पधारे और वहां भट्टभास्कर से शास्त्रार्थ हुआ परन्तु उस ने इन के मत को स्वीकार नहीं किया। यहां से बाह्लीक प्रान्तों की ओर गये और वहां जैनमत वालों से कई शास्त्रार्थ कर के उन्हें पराजित किया। वहां से इन की इच्छा कामरूप (आसाम) की ओर जाने की हुई और वहां पं० अभिनव गुप्त नामक शाक्त को शास्त्रार्थ में पराजित कर स्वमतानुयायी बनाया। यहां से वे उदीच्य, विदेह, कोशल और अङ्ग, वङ्ग आदि देशों में प्रचार करते गौड़देश की ओर चलेगये परन्तु शोक कि दो जैनियों ने विश्वासघात करके यहां उन्हें ऐसी विषयुक्त औषधि खिलादी कि जिस से उन के समस्त शरीर में फोड़े निकल आये। यद्यपि बहुत चिकित्सा हुई परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। ऐसी दशा में भी आपने प्रचार का काम ढीला नहीं किया और कश्मीर की ओर चल दिये। यहां एक मठ स्थापन करके आप बदरीनारायण, वहां से केदारनाथ गये और वहां पूर्ण युवावस्था में अर्थात् ३२ बत्तीस वर्ष की आयु में इस नश्वर शरीर को छोड़ स्वर्गवासी होगये।

स्वामी शंकराचार्य जी की मृत्यु से इस देश को बड़ी हानि पहुंची और जो वैदिक धर्म का प्रचार देश में होने वाला था कुछ काल के लिये रुक गया। उन के पीछे उन के शिष्य 'ब्रह्म सत्य और जगत् मिथ्या' का उपदेश [जो जैनियों के खण्डन के लिये स्वीकार किया गया था] आर्यावर्त्त में करने लगे और सब मनुष्यों को ब्रह्म बना कर ईश्वर से विमुख कर दिया।

स्वामी शंकराचार्य जी ने दक्षिण में शृङ्गेरी, पूर्व में भूगोवर्द्धन उत्तर में जोसी और पश्चिम (द्वारिका) में सारदा मठ; ब्रह्म विद्या के उपदेशार्थ नियत किये थे। इन के अतिरिक्त प्रयाग, हरिद्वार आदि स्थानों में बारहवें वर्ष कुम्भ के मेलों का भी आरम्भ इसी लिये कराया गया था कि वहां सर्वसाधारण को वैदिक धर्म का उपदेश मिलता रहे और वे फिर कभी नास्तिक-वाद के गढ़े में न गिर जावें।

हमारा दृढ़ विश्वास है कि यदि स्वा० शंकराचार्यजी की अवस्थाकुछ और अधिक होती तो वे अपने सिद्धान्तों को परिष्कृत अवश्यही करते।

बहुत से लोगों का मत है कि प्रशंसित स्वामी जी वैदिक सिद्धान्तों से अनिभिज्ञ थे इसी कारण उन्हों ने वेदविरुद्ध इस मायावाद की सृष्टि की परन्तु हम उन से सहमत नहीं हैं। स्वामी शंकराचार्यजी के हृदय में वेदों की बड़ी श्रद्धा थी और जब उन्हों ने द्वैतवाद का खण्डन किया है तो यह कहना निरर्थक है कि वे इस सिद्धान्त से अभिज्ञ नहीं थे। वास्तव में उन्हों ने यह पक्ष जैनियों के सिद्धान्त को खण्डन करने के लिये ही स्वीकार किया था जो कार्यरूप जगत् को अनादि और कर्मों को ही फलप्रदाता मानते थे और उस के कर्त्ता ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते थे। तथा मण्डन मिश्र आदि को अपने पक्ष में मिलाने की इस लिये आवश्यकता पड़ी होगी कि जिस से न केवल खण्डन मण्डन के कार्य्य में उन से सहायता मिले वरञ्च नास्तिकों को यह कहने का अवसर न मिले कि यह अद्वैतवाद वैदिक सिद्धान्त नहीं है।

स्वामी शङ्कराचार्य जी के पश्चात् उन के मतानुयायियों को भी इस विषय में शङ्कायें उत्तपन्न हुईं और अन्तिम उन्हों ने जीव और ईश्वर के भेद को ही सर्वतन्त्र सिद्धान्त माना है प्रसिद्ध वेदान्ती विज्ञानभिक्षु जी भी लिखते हैं:—

लयस्तु सूक्ष्मी भावेनाऽवस्थानं न तु नाश इति ॥

अर्थात् ब्रह्म में जीव का लय होना; सूक्ष्म भाव से रहना है, उसके नाश होजाने का नाम, लय होना, नहीं है।

इसी प्रकार अन्य विद्वानों ने भी इसे वैदिक सिद्धान्त नहीं माना निदान पद्मपुराण का बनाने वाला लिखता है कि:—

मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमेव च। मयैव कथितं देवि! कलौ ब्राह्मणरूपिणा ॥ १ ॥ अपार्थं श्रुतिवाक्यानां दर्शयंल्लोकगर्हितम्। कर्मस्वरूपत्याज्यत्वमत्र च प्रतिपाद्यते ॥ २ ॥ सर्वकर्मपरिभ्रंशान्नैष्कर्म्यं तत्र चोच्यते। परात्मजीवयोरैक्यं मयात्र प्रतिपाद्यते ॥ ३ ॥ ब्रह्मणोऽस्य परं रूपं निर्गुणं दर्शितं मया। सर्वस्य जगतोऽप्यस्य नाशनार्थं कलौ युगे ॥४॥ वेदार्थवन्महाशास्त्रं मायावादमवैदिकम्। मयैव कथितं देवि! जगतां नाशकारणात् ॥५॥

अर्थ—पार्वती जी से महादेव जी कहते हैं हे देवि! मायावाद का

असत् शास्त्र जो छिपा हुआ बौद्ध मत है मैं ने ही कलियुग में ब्राह्मण * का रूप धर के रचा है ॥१॥ जिस में वैदिक श्रुतियों का उलटा अर्थ किया है तथा वेद की निन्दा है और कर्मों को सर्वथा छोड़ देने का वर्णन है ॥२॥ तथा जिस में सर्वकर्मों से रहित को ही निष्कर्म कहा है और साथ ही परमात्मा तथा जीव की एकता भी करदी है ॥३॥ जिस में परब्रह्म को सर्वथा गुणों से रहित कहा है वह मैं ने स्वयं जगत् के नाशार्थ इस लिये कि कलियुग में वेद के सदृश प्रकट हो (परन्तु वास्तव में वह अवैदिक है) रचा है ॥४॥ हे देवि ! जगत् के नाश के लिये वेदार्थ के सदृश वेद विरुद्ध यह मायावाद शास्त्र मैं ने ही कहा है।

स्वामी शङ्कराचार्य जी के समय में भी बड़ा मत भेद है कोई सन् १००० ई० में और कोई ८०० ई० में इन का होना बतलाते है। प्रोफ़ेसर विलसन्, कालब्रुक, राजा राममोहनराय, जनेश्वर शास्त्री तथा प्रोफ़ेसर जयनारायण तर्कपञ्चानन सब की यही सम्मति है कि शङ्कर स्वामी इस आठवीं शताब्दि में हुए हैं। कोई २ विद्वान् इन से भी बढ़कर ११०० और १४०० ईसवी से आगे नहीं बढ़ते और इन्हीं की देखा देखी मिस्टर आर० सी० दत्त ने भी सन् ११०० ई० स्थिर किया है परन्तु उन्नीसवीं शताब्दि के परम विद्वान् वेद और शास्त्रों के पूर्ण ज्ञाता योगिराज महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज अपने सत्यार्थप्रकाश नामक ग्रन्थ में लिखते हैं किः—

"बाईस सौ वर्ष हुए कि शङ्कराचार्य द्रविड़देशोत्पन्न ब्राह्मण ब्रह्मचर्य से व्याकरणादि सब शास्त्रों को पढ़ कर शोचने लगे कि अहह ! सत्य आस्तिक वेद मत का छुटना और जैन नास्तिक मत का चलना बड़ी हानि की बात हुई है इस को किसी प्रकार हटाना चाहिये। शङ्कराचार्य शास्त्र तो पढ़े ही थे परन्तु जैन मत के पुस्तक भी पढ़े थे * * * * * *"

यद्यपि हमें किसी विद्वान् के मत का पक्षपात नहीं परन्तु प्रमाणों से जो सिद्ध हो वही मानना चाहिये। स्वामी शङ्कराचार्य के पश्चात्

* परशुराम, श्रीराम, कृष्ण, सिकन्दर, ईसा, आदि की तरह शङ्कर स्वामी को भी इन की मृत्यु के पीछे, वाममार्गी शैवों ने, अपने मत के खंडन की आशंका से, शिव जी का अवतार मान कर, अद्वैत-वाद की सहानुभूति प्राप्त की प्रतीत होती है।

द्वारकापुरी के शारदा पीठ पर श्री सुरेश्वराचार्य से लेकर श्री नृसिंहाश्रम तक २८ शङ्कराचार्य * जी विराजमान हुए हैं अन्तिम श्री नृसिंहाश्रम जी को गुर्जरदेशाधिपति श्रीमान् राजा सर्वजिद्धर्मा ने महाराज विक्रम की नवीं शताब्दि में ताम्रपत्र अर्पण किया था जो अब तक द्वारकापुरी में वर्त्तमान है, और जिस में उपर्युक्त २८ शंकराचार्यों का अनुशासनकाल न्यूनाधिक १३३७ वर्ष लिखा है, यदि इस में महाराज विक्रम के शेष १००० वर्ष जोड़ दिये जावें तो कुल २३३७ वर्ष श्री स्वामी जी महाराज के निर्धारित समय से मिलजाते हैं।

(२) राजा सुधन्वा ने आदि शङ्कराचार्य जी को जो ताम्रपत्र अर्पण किया था उस में २६६३ युधिष्ठिर संवत् लिखा है अब युधिष्ठिर संवत् ५००९ है अतः शेष २३४६ वर्ष का समय भी उपर्युक्त समय से मिलता है।

(३) गोवर्धन पीठ पर आज तक १४१ आचार्य्य विराजमान हुए यदि प्रत्येक आचार्य के समय का मध्यभाग (औसत) १७ वर्ष भी माना जावे तब भी २३०० वर्ष के ऊपर ही समय आता है।

शैवादि मतों के साथ मायावादियों का सम्मेलन, जैनमत का पुनरागमन तथा उसके प्रदमनार्थ अर्बुदगिरि के हवनकुण्ड से राजपूतों की उत्पत्ति

हम पूर्व लिख चुके हैं कि वाममार्ग को खुल्लमखुल्ला अनेक कुकर्म करने का साहस केवल इस लिये ही होगया था कि उस ने अपने पक्ष को पुष्ट करने के लिये खींच तान करके वेदों के प्रमाण देने आरम्भ कर दिये थे, शनैः २ उसने अपने साहस को इतना बढ़ाया कि मनु, मीमांसाशास्त्र, गृह्यसूत्र और ब्राह्मण ग्रन्थोंमें भीअपने मत के पोषक वाक्य मिश्रित करना आरम्भ कर दिये। हमारा विश्वास है कि यदि वेदों की रचना अमानुषीय न होती और उन्हें प्राचीनकाल से कण्ठस्थ करने की परिपाटी न चली आती तो इन में भी अवश्यमेव मिलावट की जाती परन्तु यह काम उनकी शक्तिसे बाहर होने के कारण नहीं हो पाया। उपर्युक्त प्रमाणों पर दृष्टिपात करते हुए यदि हम यह कहने का साहस करें तो अनुचित न होगा कि भारतवासियों को इस जालसाज़ी का पाठ सब से पहिले वाममार्गियों ने ही सिखलाया था। स्वामी शङ्कराचार्य्य जी का शरीरपात होने पर

* प्रागुक्त चारों मठों में जो आचार्य विराजमान होते हैं वे अब तक शङ्कराचार्य ही कहलाते हैं।

शैव-मत ने फिर शिर उठाया और जैनियों के तीर्थङ्करों की तरह उन स्वामी शङ्कराचार्य्य जी महाराज को, जिन्होंने शैवों के भस्म आदि अवैदिक चिह्नों का रुद्ररूप धारण कर के खण्डन किया था, शिव का अवतार मानने लगे। इधर स्वा० शंकराचार्य्यजी के शिष्य और प्रशिष्यों ने भी वेदप्रचाररूपी कठिन व्रत के पालन से मुख मोड़, मठों में चैन उड़ाना और विरक्त हो कर भी राजसीठाट से रहना आरम्भ कर दिया। शैवमत ने भी, शंकरस्वामी को शिव का अवतार ठहराकर और उनके शिष्यों को भेट पूजा देकर, अपनी एक कठिनता दूर कर डाली, इधर शंकर स्वामी के मतानुयायी मायावादी भी अपने गुरु की प्रतिष्ठा और अपनी आय में सन्तोषजनक वृद्धि देख, शैवमत के साथ नीर-क्षीर बन गये।

शाक्त मत; जिस का प्रत्येक मत के साथ मिल कर ही अपना रंग चढ़ा देना मुख्य उद्देश्य था और जो शंकर स्वामी के पूर्व शैवमत का आधा अङ्ग बन रहा था, कब चूकने वाला था, इस लिये जहां भस्म और रुद्राक्ष को मुक्ति का साधन माना जाता था, वहां इस ने जैनियों की देखा देखी, इस बिगड़े हुए वैदिक अथवा पौराणिकमत को, मूर्त्ति-पूजा भी सिखला दी और उस में भी अपने सिद्धान्तों के प्रचार पर विशेष लक्ष्य रक्खा, अर्थात् योनि, या जलाधारी (जलहरी) में लिङ्ग को स्थित कर के उस के पूजन को मुक्ति का साधन मान लिया।

शंकर स्वामी के १० वर्ष के अविश्रान्त परिश्रम ने यद्यपि जैन (बौद्ध) मत को बड़ा भारी धक्का लगाया था परन्तु वह पकड़े हुए विष-धर की तरह, वैदिकधर्म को डसने का, बराबर अवसर देखता चला आरहा था; उस की दशा ठीक आजकल के ईसाई पादरियों की सी होरही थी जो वैदिकधर्म के प्रबल आक्षेपों के समक्ष ठहरने की शक्ति न रख कर गुप्तरूपेण उसे हानि पहुंचाने का सतत उद्योग करते रहते हैं। निदान बौद्धों ने फिर शिर उठाया और अनेक उपायों का अव-लम्बन कर के, नास्तिकवाद का प्रचार, ज़ोर शोर से करना आरम्भ कर दिया। जब बौद्धों की संख्या भारत में पुनः बढ़ गई तो ब्राह्मणों ने बलपूर्वक उसे दमन करने का एक उपाय सोचा अर्थात् अर्बुद-गिरि अथवा आबू-पर्वत के ऊपर एक बृहत् यज्ञ कर, और वहां युद्धोपयोगी

ऐसी जातियों को जो उस समय द्विज-कोटि से वाह्य ❋ समझी जाती थीं, शुद्ध करके एक गुरुतर सामरिक शक्ति सम्पादन करली। उन संस्कृत क्षत्रियों ने मार २ कर बौद्धों के भीतर से नास्तिकवाद की शिक्षा को निकाल डाला और शैव, शाक्त, वैष्णव आदि मतों के सम्मेलन से उत्पन्न हुए पौराणिक मत का अटक से लेकर कटक तक और हिमालय से लेकर सेतबन्ध-रामेश्वर तक भारत में पुनः प्रादुर्भाव कर दिया।

यद्यपि यह प्रसिद्ध है कि अर्बुद-गिरि के वृहत् यज्ञ में देवताओं का आह्वान किया गया था जिन्होंने आकर हवनकुण्ड में चार मूर्त्तियें डाल दीं जिन से परमार, चौहान, सोलंकी और परिहार चार प्रकार के राजपूतों की उत्पत्ति हुई परन्तु यह बात सृष्टि-क्रम के विरुद्ध और असम्भव है अतएव कदापि माननीय नहीं है। ऐसा केवल इसी लिये किया गया होगा कि कोई व्यक्ति वा जाति विशेष, उन्हें द्विज कोटि मेंसम्मिलित करने के ऊपर, आक्षेप न करने पावे, परन्तु पौराणिक शिक्षा से उस समय वर्णव्यवस्था के बन्धन ऐसे ढीले पड़ गये थे कि यह नवसंस्कृत-क्षत्रिय-वर्णोचित-जातियें अब तक राजपूत, रजपूत अथवा ठाकुर नामों से ही प्रसिद्ध चली जा रही हैं।

पुराणों की उत्पत्ति और उन की शिक्षा तथा समीक्षा-

बौद्धमत की कमर टूटते ही पौराणिक मत ने फिर ज़ोर पकड़ा। इस बार उस ने जैनियों की भांति बड़े २ मन्दिर निर्माण किये और तीर्थङ्करों के स्थान में राम, कृष्ण आदि प्रतापी राजाओं की प्रतिमायें स्थापन कर दी गईं। निदान जिन २ सामग्रियों के वशीभूत हो कर जन-समूह जैनियों की ओर आकर्षित हो जाता था वे सब ही इन मन्दिरों में प्रस्तुत करदी गईं और अपने सिद्धान्तों की रक्षार्थ अठारह से अधिक पुराणों के हर्म्य की नींव भी लगभग इसी समय की रक्खी गई जिसके कि निर्माण का कार्य्य सिक्खों के समय तक बराबर जारी रहा। उस समय महाराज विक्रमादित्य और भोज + प्रभृति नृपतिगण संसार में विद्यमान

❋ राजा शिवप्रसाद जी सितारे हिन्द के इस लेख से कि "उनका नया जन्म मानकर असली क्षत्रिय बना लिया" यही ध्वनि प्रकट होती है कि उस समय वे जातियें द्विज-कोटि के अन्तर्गत नहीं मानी जाती थीं।

+ महाराज भोज के समय में मार्कण्डेय और शिवपुराण बना कर व्यास जी के नाम से प्रसिद्ध किये गये। जब उन्हें यह समाचार मिला तो बनाने वाले के हाथ कटवा डाले और आज्ञा दी कि आगे को कोई मनुष्य अपनी बनाई पुस्तकों में ऋषि, मुनियों का नाम न डाले।

नहीं थे जो इस अनुचित कर्म को रोकने का प्रयत्न करते निदान जहां बौद्धों द्वारा नष्ट किये प्राचीन पुराणों के अनेक अंश इन नवीन पुराण-पुस्तकों में लिखेगये, उनके साथही इन्द्र, अहल्या आदि के उपाख्यान जिन्हें अब तक वेदों तथा ब्राह्मण ग्रन्थों से खेंचतान करके सिद्ध किया जाता था इन में लेखबद्ध करदिये गये और महर्षि व्यास की उन पर मुद्रा (मुहर) लगादी ताकि किसी को उन्हें अन्यथा कहने का साहस न पड़े। इससे पूर्व कि हम पुराणों के विषय में कुछ कथन करें यह उचित प्रतीत होता है कि १८ पुराणों के नाम आप को बतला दें।

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवञ्च शैवं भागवतं तथा। अथान्यन्नारदीयञ्च मार्कण्डेयञ्च सप्तमम् ॥ १ ॥ आग्नेयमष्टमञ्चैव भविष्यं नवमं तथा। दशमं ब्रह्मवैवर्त्तं लैङ्गमेकादशं स्मृतम् ॥ २ ॥ वाराहं द्वादशञ्चैव स्कान्दं चात्र त्रयोदशम्। चतुर्दशं वामनञ्च कौर्म्यं पञ्चदशं स्मृतम् ॥ ३ ॥ मात्स्यञ्च गारुड़ञ्चैव ब्रह्माण्डञ्च ततः परम् ॥ ४ ॥

अर्थात् १ ब्राह्म २ पद्म ३ विष्णु ४ शिव ५ भागवत ६ नारद ७ मारकण्डेय ८ अग्नि ९ भविष्य १० ब्रह्मवैवर्त्त ११ लिङ्ग १२ बाराह १३ स्कन्द १४ वामन १५ कूर्म १६ मत्स्य १७ गरुड़ और १८ वां ब्रह्माण्ड पुराण हैं।

यद्यपि हम पद्मपुराण के कुछ श्लोक मायावाद के खण्डन में पीछे लिख आये है जिस से पद्मपुराण का शङ्कर स्वामी के पश्चात् लिखा जाना। विदित है कि इसी प्रकार भागवत के श्लोक से भी जो हम श्रीकृष्ण के परलोक गमन विषय में पीछे उद्धृत कर चुके हैं ज्ञात होता है कि यह यह व्यास जी की रची हुई नहीं क्योंकि यदि व्यास जी रचते तो ऐसा कदापि न लिखते कि "जिस दिन से श्रीकृष्ण का स्वर्गवास हुआ है उसी दिन से कलियुग आरम्भ हुआ है ऐसा प्राचीन विद्वान् कहते हैं" इस में 'प्राचीन विद्वान् कहते हैं' वाक्य स्पष्ट बतला रहा है कि यह व्यास जी की रची नहीं है इसी प्रकार अन्य पुराणों की भी व्यवस्था समझिये। यद्यपि सर्व पुराणों के रचनकाल का यहां उल्लेख करना असम्भव है अतएव हम उन की शिक्षा का कुछ अंश उद्धृत करते हैं जिस से विदित होगा कि इन में साम्प्रदायिक झगड़े बखेड़े भरे पड़े हैं और एक दूसरे का खण्डन कर रहे हैं।

विभूतिर्यस्य नो भाले नांगे रुद्राक्षधारणम्।

नास्ये शिवमयी वाणी तं त्यजेदन्त्यजं यथा ॥ शिवपुराण

जिस के माथे पर भस्म नहीं, और अंग में रुद्राक्ष नहीं है, मुख से शिव २ नहीं कहता उसे चाण्डाल के समान त्याग देना चाहिये।

ब्राह्मणः कुलजो विद्वान् भस्मधारी भवेद्यदि । वर्जयेत्तादृशं देवि! मद्योच्छिष्टं घटं यथा । (पद्म पुराण)

जो ब्राह्मण-कुलोत्पन्न-विद्वान् भस्म धारण करें उसे मद्य के झूंठे घड़े की तरह त्याग देना चाहिये।

यस्तु सन्तप्तशङ्खादि लिङ्गचिह्नधरोनरः ।
स सर्वयातनाभोगी चाण्डालो जन्मकोटिषु ॥ पृथ्वीचन्द्रोदय

जो मनुष्य तये हुए शङ्खादिकों के चिह्न धारण करता है वह सब नरकयातनाओं को भोगता है और कोटि-जन्म-पर्यन्त चाण्डाल होता है।

उपर्युक्त श्लोकों से विस्पष्ट है कि यह पुराण एक पुरुष के रचे हुए नहीं हैं वरञ्च इन्हें भिन्न २ मत के मानने वालों ने रचा है, इसी कारण इन में से प्रायः प्रत्येक में दूसरे का खण्डन पाया जाता है। जो मनुष्य यह समझते हैं कि इन्हें महर्षि व्यास जी ने रचा है उन्हें गहरी भांग के नशे में निमग्न समझना उचित है।

वैष्णव धर्म की मीमांसा और तुलसीकृत रामायण पर एक सामान्यदृष्टि

यद्यपि वैष्णव मत के स्थापक शठकोप और मुनि वाहन (जिन का समय महाराज भोज से लग १५० वर्ष के पीछे सिद्ध हुआ है) बतलाये जाते हैं परन्तु शङ्कर-दिग्विजय से ज्ञात होता कि शङ्कर स्वामी ने शैव, शाक्त, क्षपणक और कापालिकादि अवैदिक मतों के साथ ही वैष्णव मत का भी खण्डन किया है अतएव यह स्वीकार करना पड़ता है कि स्वामी शङ्कराचार्य्य जी के समय में यह मत किसी न किसी वेश में अवश्य विद्यमान था। शास्त्रों में परमात्मा को उपास्य तथा जीव को उपासक बतलाया गया है अतएव जो जीव परमात्मा से विमुख हों उन का जड़ पदार्थों के समक्ष शिर झुकाना स्वाभाविक नियम है। इतिहास हमें बतला रहा है कि बौद्ध (जैन) प्रभृति प्रबल नास्तिक मतावलम्बी ईश्वर से विमुख होने हो आचार में इतने गिर

गये कि वे पाषाण की मूर्त्तियों को ही मुक्तिदाता मान उन के आगे मत्था रगड़ने लगे। इसी प्रकार सम्भव है कि महाभारत के पश्चात्, जब भारत में अविद्यान्धकार फैल रहा था मनुष्यों ने सूर्य्य को ही अपना उपास्य देव मान लिया हो क्योंकि विष्णु, सूर्य्य का पर्याय-वाची शब्द है, जैसा कि हम महाभारत का प्रमाण देकर पीछे सिद्ध कर चुके हैं। द्वितीय पुराणों में "शुक्लाम्बरधरं" आदि विष्णु भगवान् का जो श्वेत रूप वर्णन किया है वह हमारे कथन की भली भांति पुष्टि कर रहा है। शङ्कर स्वामी ने जिस वैष्णव मत का खण्डन किया था वह हमारी सम्मति में वर्त्तमान मूर्त्तिपूजक और कण्ठी, तिलक आदि को मुक्ति का साधन मानने वाले वैष्णव सम्प्रदाय से पृथक् केवल सूर्य्य (विष्णु) का ही उपासक था जिस का कुछ २ अवशिष्ट चिह्न वर्त्तमान् पौराणिक धर्म में, सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर, अब भी अभिविदित होता है।

शठकोप नामक पुरुष के विषय में, जो इस मत का प्रवर्त्तक था, चक्राङ्कितों के पुस्तक भक्तमाल में, जिसे नाभा डोम ने बनाया है, लिखा है कि "विक्रीय्यं शूपं विचचार योगी" अर्थात् शठकोप शूप बेचा करता था, इस से प्रसिद्ध है कि वह जाति का कञ्जर था। अनुमान है कि उसने ब्राह्मणों से पढ़ने की अभिलाषा की होगी, परन्तु उस समय के ब्राह्मण संस्कृत विद्या को अपनी ही मिलकियत समझते थे अतएव सम्भव है कि उस का तिरस्कार करके न पढ़ाया हो। चाहे कुछ भी कारण क्यों न हो उस ने ब्राह्मणों के विरुद्ध तिलक, कण्ठी, माला, मूर्त्तिपूजन, शङ्खचक्रादिकों से शरीर दागना इत्यादि, अशास्त्रीय बातों को मुक्ति का साधन मान, अपने मत का प्रचार करना आरम्भ कर दिया। शठकोप का चेला, मुनिवाहन, जो चाण्डाल वर्ण में उत्पन्न हुआ था और उसका शिष्य यावनाचार्य्य, जिसने यवनकुल में जन्म लिया था, उत्तरोत्तर उपर्युक्त मत का प्रचार करते रहे। उस समय शङ्कर स्वामी के मायावाद की शिक्षा लगभग समस्त भारत में फैल चुकी थी जिसने कि मनुष्योंको ब्रह्म बनाकर आलसी, निरुद्यमी और ईश्वर से विमुख बनादिया था अतएव अनेक मूर्ख लोग मायावाद की शिक्षा से घबरा कर इस मत में प्रविष्ट होने लगे। कुछ कालोपरान्त

रामानुज नामक एक ब्राह्मणकुलोत्पन्न पुरुष चक्राङ्कित हुआ जिसने शङ्कर स्वामी के विरुद्ध जीव, ब्रह्म और माया; तीन पदार्थों को अनादि माना और अपने बनाये संस्कृत ग्रन्थों में तथा उपनिषद् की टीकाओं में शङ्कर स्वामी की भारी निन्दा की, तथा इसी समय के लग भग वैष्णव मत का आधार रूप विष्णु पुराण नामक ग्रन्थ भी रचा गया।

रामानुज का चेला रामानन्द हुआ और इस ने संस्कृत के स्थान में भाषा में अनेक ग्रन्थ रचे एवं मोची, नाई, जुलाहे आदि नीच-वर्णस्थ पुरुषों को अपना शिष्य बनाना आरम्भ कर दिया।

इस मत के मानने वालों ने श्री रामचन्द्र जी को साक्षात् विष्णु भगवान् का अवतार मान कर; झांझ, घड़ियाल और शङ्खध्वनि आदि अनेक आडम्बरों के सहित ठाकुर-पूजा आरम्भ कर दी, और अपना अमूल्य समय विद्याध्ययन तथा शास्त्रों के विचारने में न लगा कर पाषाण-शिलाओं को वस्त्राभूषणों से अलङ्कृत करने और उन्हें अनेक पदार्थों का भोग लगाने में व्यर्थ नष्ट करने लगे।

गोस्वामी तुलसीदास जी; रामचन्द्र जी को ईश्वर का अवतार माननेवाले परमवैष्णव थे इस लिये उन्हों ने जो भाषाकाव्यमयी-रामायण लिखी है वह ऐतिहासिक ग्रन्थों की कोटि में नहीं गिनी जा सक्ती हां हम उसे भाषाकाव्य का अथवा वैष्णव मत को प्रतिपादन करने वाला एक अपूर्व ग्रन्थ कह सक्ते हैं। कारण यह है, कि उस में अनेक बातें मूल ऐतिहासिक ग्रन्थ अर्थात् वाल्मीकीय रामायण से विरुद्ध लिखी हैं यथाः—

तुलसीकृत रामायण में लिखा है कि रामचन्द्र जी ने जनकपुर की पुष्पवाटिका में सीता को देखा जो देवी की पूजा करने के लिये गई थीं तथा उन्हों ने समुद्र के किनारे रामेश्वर नामक शिव की स्थापना की परन्तु वाल्मीकि रामायण में कहीं इन का पता नहीं है। इसी प्रकार तुलसीकृत रामायण में लिखा है कि सेतु बांधते समय, केवल नल नील के छू देने सेही, पत्थर की शिलायें तरजाती थीं परंतु वाल्मीकि रामायण में इस के प्रतिकूल शिल्प विद्या से पुल का बनाना लिखा है। इत्यादि २।

तुलसीकृत रामायण को बने अभी पूरे तीन सौ वर्ष भी नहीं हो

पाये हैं क्योंकि तुलसीदास जी की मृत्यु को २८४ वर्ष बीते जैसा कि निम्न दोहे से विदित होगाः—

संवत् सोलहसौ असी असी गंग के तीर ।
सावन शुक्ला सप्तमी तुलसी तज्यौ शरीर ॥

अर्थात् गु० तुलसीदासजी ने श्रावणशुक्ला सप्तमी सं० १६८० में शरीरत्यागा।

भारत वर्ष के पराधीन होने के कारण

आधुनिक विद्वानों का प्रायः यह निश्चय है कि आर्य्यजाति के पराधीन होने का मुख्यकारण, इस का धर्म कर्म में अपने अमूल्य समय को व्यर्थ नष्ट कर देना है, परन्तु हम उन के इस विचार से सहमत नहीं हैं। प्रत्येक वस्तु की स्थिति संसार में तभी तक विद्यमान है जब तक उस में अपना धर्म उपस्थित है, क्योंकि यदि कोई धर्मी अपने धर्म को परित्यक्त करदे तो संसार में उस के स्वरूप का चिह्न भी न मिलेगा। यद्यपि हमारा यह निश्चय है कि कोई व्यक्ति वा पदार्थ विशेष अपने समस्त धर्मों से पराङ्मुख नहीं होसक्ता परन्तु अविद्या तथा संस्कार आदि के दोष से उस में ठीक इसी प्रकार अनेक दोष उत्पन्न हो जाते हैं जिस प्रकार शीतल जल, अग्नि-संयोग से उत्तप्त हो जाता है।

संसार में बड़े से बड़े मिथ्यावादी और परद्रव्यापहारणादि-दुर्गुण-विशिष्ट पुरुषों में अधर्मकार्यों की अपेक्षा, उनके धर्मकार्यों के परिमाण में ही गुरुता मिलती है। यथा कल्पना करो किसी मनुष्य ने यह प्रतिज्ञा करली है कि मैं कभी सत्य न बोलूंगा तो वह अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहते हुए कदापि अपना अस्तित्व संसार में नहीं रखसक्ता। सिद्धान्त यह निकला कि धर्म; आत्मा का स्वाभाविक गुण है और अपने स्वाभाविक गुण को धारण करने से किसी व्यक्ति वा जाति की अवनति कदापि नहीं होती वरन् धर्म से वह सदा उन्नति के अत्युच्च शिखर की ओर अति वेग के साथ गमन करती हैं। भारत की अधोगति धर्म से नहीं, वरञ्च अधर्म और अनाचार के अवलम्बन से हुई है, अर्थात् जब से भारत की शासक जाति ने विद्या देवी का विसर्जन किया तभी से उसमें अनेक दुर्गुण प्रवेश कर गये क्योंकि नीति में लिखा है किः—

यौवनं धन सम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता ।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ॥

अर्थात् यौवन, धन की वृद्धि, ऐश्वर्य्य और कुविचार इन में एक २

रामानुज नामक एक ब्राह्मणकुलोत्पन्न पुरुष चक्राङ्कित हुआ जिसने शङ्कर स्वामी के विरुद्ध जीव, ब्रह्म और माया; तीन पदार्थों को अनादि माना और अपने बनाये संस्कृत ग्रन्थों में तथा उपनिषद् की टीकाओं में शङ्कर स्वामी की भारी निन्दा की, तथा इसी समय के लग भग वैष्णव मत का आधार रूप विष्णु पुराण नामक ग्रन्थ भी रचा गया।

रामानुज का चेला रामानन्द हुआ और इस ने संस्कृत के स्थान में भाषा में अनेक ग्रन्थ रचे एवं मोची, नाई, जुलाहे आदि नीच-वर्णस्थ पुरुषों को अपना शिष्य बनाना आरम्भ कर दिया।

इस मत के मानने वालों ने श्री रामचन्द्र जी को साक्षात् विष्णु भगवान् का अवतार मान कर; झांझ, घड़ियाल और शङ्खध्वनि आदि अनेक आडम्बरों के सहित ठाकुर-पूजा आरम्भ कर दी, और अपना अमूल्य समय विद्याध्ययन तथा शास्त्रों के विचारने में न लगा कर पाषाण-शिलाओं को वस्त्राभूषणों से अलङ्कृत करने और उन्हें अनेक पदार्थों का भोग लगाने में व्यर्थ नष्ट करने लगे।

गोस्वामी तुलसीदास जी; रामचन्द्र जी को ईश्वर का अवतार माननेवाले परमवैष्णव थे इस लिये उन्हों ने जो भाषाकाव्यमयी-रामायण लिखी है वह ऐतिहासिक ग्रन्थों की कोटि में नहीं गिनी जा सक्ती हां हम उसे भाषाकाव्य का अथवा वैष्णव मत को प्रतिपादन करने वाला एक अपूर्व ग्रन्थ कह सक्ते हैं। कारण यह है कि उस में अनेक बातें मूल ऐतिहासिक ग्रन्थ अर्थात् वाल्मीकीय रामायण से विरुद्ध लिखी हैं यथाः—

तुलसीकृत रामायण में लिखा है कि रामचन्द्र जी ने जनकपुर की पुष्पवाटिका में सीता को देखा जो देवी की पूजा करने के लिये गई थीं तथा उन्हों ने समुद्र के किनारे रामेश्वर नामक शिव की स्थापना की परन्तु वाल्मीकि रामायण में कहीं इन का पता नहीं है। इसी प्रकार तुलसीकृत रामायण में लिखा है कि सेतु बांधते समय, केवल नल नील के छू देने से ही, पत्थर की शिलायें तरजाती थीं परंतु वाल्मीकि रामायण में इस के प्रतिकूल शिल्प विद्या से पुल का बनाना लिखा है। इत्यादि २।

तुलसीकृत रामायण को बने अभी पूरे तीन सौ वर्ष भी नहीं हो

पाये हैं क्योंकि तुलसीदास जी की मृत्यु को २८४ वर्ष बीते जैसा कि निम्न दोहे से विदित होगाः—

संवत् सोलहसौ असी असी गंग के तीर ।
सावन शुक्ला सप्तमी तुलसी तज्यौ शरीर ॥

अर्थात् गु० तुलसीदासजी ने श्रावणशुक्ला सप्तमी सं० १६८० में शरीरत्यागा।

भारत वर्ष के पराधीन होने के कारण

आधुनिक विद्वानों का प्रायः यह निश्चय है कि आर्य्यजाति के पराधीन होने का मुख्यकारण, इस का धर्म कर्म में अपने अमूल्य समय को व्यर्थ नष्ट कर देना है, परन्तु हम उन के इस विचार से सहमत नहीं हैं। प्रत्येक वस्तु की स्थिति संसार में तभी तक विद्यमान है जब तक उस में अपना धर्म उपस्थित है, क्योंकि यदि कोई धर्मी अपने धर्म को परित्यक्त करदे तो संसार में उस के स्वरूप का चिह्न भी न मिलेगा। यद्यपि हमारा यह निश्चय है कि कोई व्यक्ति वा पदार्थ विशेष अपने समस्त धर्मों से पराङ्मुख नहीं होसक्ता परन्तु अविद्या तथा संस्कार आदि के दोष से उस में ठीक इसी प्रकार अनेक दोष उत्पन्न हो जाते हैं जिस प्रकार शीतल जल, अग्नि-संयोग से उत्तप्त हो जाता है।

संसार में बड़े से बड़े मिथ्यावादी और परद्रव्यापहारणादि-दुर्गुण-विशिष्ट पुरुषों में अधर्मकार्यों की अपेक्षा, उनके धर्मकार्यों के परिमाण में ही गुरुता मिलती है। यथा कल्पना करो किसी मनुष्य ने यह प्रतिज्ञा करली है कि मैं कभी सत्य न बोलूंगा तो वह अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहते हुए कदापि अपना अस्तित्व संसार में नहीं रखसक्ता। सिद्धान्त यह निकला कि धर्म; आत्मा का स्वाभाविक गुण है और अपने स्वाभाविक गुण को धारण करने से किसी व्यक्ति वा जाति की अवनति कदापि नहीं होती वरन् धर्म से वह सदा उन्नति के अत्युच्च शिखर की ओर अति वेग के साथ गमन करती हैं। भारत की अधोगति धर्म से नहीं, वरञ्च अधर्म और अनाचार के अवलम्बन से हुई है, अर्थात् जब से भारत की शासक जाति ने विद्या देवी का विसर्जन किया तभी से उसमें अनेक दुर्गुण प्रवेश कर गये क्योंकि नीति में लिखा है किः—

यौवनं धन सम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता ।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ॥

अर्थात् यौवन, धन की वृद्धि, ऐश्वर्य्य और कुविचार इन में एक २

ही अनर्थ का कारण हैं परन्तु जहां चारों उपस्थित हों वहां का कहना ही क्या है।

निदान जब भारत की ऐश्वर्य्य-सम्पन्न जातियों के समीप चारों ही नाश के हेतु एकत्रित होगये तो वे ईश्वरीय न्यायव्यवस्थानुसार नष्टभ्रष्ट हुए विना कैसे रह सक्ती थीं ?।

शोक है कि शृङ्खलाबद्ध किसी इतिहास के न मिलने से हम उस समय का पूरा चित्र नहीं खींच सक्ते और भाट तथा चारणों से जो कुछ भी उपर्युक्त राजाओं के सम्बन्ध में बातें मालूम होती हैं वे सब विश्वास योग्य नहीं है, कारण यह है कि उस समय भाटों या चारणों का झूंठी स्तुति करके राजाओं को प्रसन्न करना और उन की वंशावलियों को सीधी सूर्य अथवा चन्द्रमा तक पहुंचा देना ही मुख्य उद्देश्य रहगया था। निदान राजा शिव प्रसाद जी सितारे हिन्द लिखते हैं कि:-

"हम को इन भाटों के बनाये इतिहासों के नष्ट होजाने का कुछ बहुत बड़ा अफ़सोस भी नहीं है क्योंकि वे अपने स्वामियों को प्रसन्न करने के लिये और उन की बड़ाई दिखलाने के लिये मन मानती बातें बनाकर जोड़ लेते थे, एक सच्च होती थी तो उस में दस झूंठ मिला देते थे, जो बात राजा के अपमान की हुई बिलकुल उड़ादी और जो उन के प्रतिष्ठा की पाई सौगुनी बढ़ादी, यदि किसी राजा के बाप का पता न लगा तो देवता को उस का बाप बनाया, यदि उस ने कुछ मन्द काम किया तो किसी का शाप उसके गले लगाया। यदि मिसाल चाहो तो एक नहीं हम सौ देसक्ते हैं। अभी कुछ दिन काठियाबाड़ में पोरबन्दर अथवा सुदामातट के पुंछड़िया राजा ने उदयपुर वाले की लड़की चाही, उदयपुर के राजा ने वंशावली पूछ भेजी, तब तो तरद्दुद पैदा हुआ, भाटों पर ताकीद की गई कि जल्द वंशावली दाख़िल करें। भाट घबराये, राजा कुछ ख़ानदानी न था, वंश दश, पांच पुश्त से आगे न चल सका। राजा ने भाट को धमकाया, भाट ने कुछ दिन की मोहलत लेकर एक अर्ज़ी इस मज़मून की पेश की कि अन्नदाता ! मैंने देवीजी के मन्दिर में धरना दिया था सो आज सात दिन निराहार, निर्जल रहने के बाद देवी जी ने स्वप्न दिया है कि आप के वंशकर्त्ता साक्षात् हनुमान् हैं, लङ्का जाते समय समुद्र में पसीना

गिरा, मगर के मादे (स्त्री) ने निगला, वह गर्भवती हो समुद्र में बहती हुई काठियावाड़ के किनारे आलगी, यहां दुमदार बच्चा दिया, उस की औलाद आप हैं। आगे आप के ख़ानदान में सब के पूंछ होती थी इसलिये पुंछड़िया नाम पड़ा अब कुछ दिनों से, कलिकाल के प्रभाव से मौक़ूफ़ होगई है। राजा ने खुश होकर भाट को बहुत सा इनाम दिया और काग़ज़ उदयपुर भेजदिया * * * * * *" (देखो इतिहास-तिमिर-नाशक भाग तीसरा पृष्ठ ३ और ४ छापा सन् १८८७ ईसवी।

यही कारण है कि रजवाड़ों में विद्वान् पुरुषों की इतनी प्रतिष्ठा नहीं होती जितनी कि इन आकाश और पाताल एक कर देने वाले भाटों या चारणों की हुआ करती है। निदान इन के कथन में सें किसी तत्व का अनुसन्धान करना अपने समय का नितान्त नष्ट करना है परन्तु भागवतादि पुराणों से उस समय के कुछ २ वृत्तान्त विदित होते हैं। भागवत में महाराज रामचन्द्र के बेटे कुश के वंशधर राजा वृहद्बल के पश्चात्, जो महाभारत के समय में उपस्थित था और अर्जुन के बेटे अभिमन्यु के हाथ से मारा गया, सुमित्र तक २८ राजा लिखे हैं, और फिर यह भी लिखा है कि राजा सुमित्र के पश्चात् इक्ष्वाकु वंश की इति श्री हो जायगी।

पुनः प्रद्योदक, शिशुनाग, नन्दवंशीय आदि भावी राज वंशों का वर्णन भविष्यतवाणी में करने के पश्चात् उनके आगे होनेवाले राजाओं के विषय में लिखा है कि यह राजा शूद्रतुल्य होंगे और म्लेच्छवत आचार ग्रहण कर के प्रजा को विविध प्रकार से पीड़ित करेंगे।

उपर्युक्त लेख से ज्ञात होता है कि जिस समय भागवत का पुस्तक रचा गया है उस समय शासकों का वर्त्ताव प्रजा के प्रति उत्तम नहीं था, तथा यह भी सुना जाता है कि उस समय वें मद्य, मांस और स्त्रिप्रसङ्गादि दोषों में स्वयं ही निमग्न नहीं रहते थे वरन् उनका अत्याचार यहां तक जोर पकड़गया था कि वे अपने अभीष्टकी सिद्ध्यर्थ विशेष जाति के पिता-विहीन ऐसे बालक को, जो अपनी माता का आश्रय-दाता एकाकी ही होता था देवी के सामने बलात्कार बलि चढ़ाते थे। उनके इस अत्याचार की इतिश्री यहीं नहीं हो जाती थी परन्तु इस से भी बढ़ कर उन का अत्याचार कभीं २ यहां तक भयङ्कररूप धारण कर

लेता था कि उस की शोक-सन्तप्ता माता को पाषाण-हृदया बनाने की पूरी २ चेष्टायें की जाती थीं अर्थात् उस को इतना विवश किया जाता था कि वह उस के बलि की कुल रस्मों को अदा करे और अश्रुओं का एक विन्दु भी अपने नेत्रों से न निकाले !!!। इस से भी बढ़ कर पुत्री-बध की महा घृणित और निन्दनीय रीति उन में बड़े ज़ोर शोर के साथ जारी थी जिस की विद्यमानता, राजा शिव प्रसाद जी ने, अपने समय तक स्वीकार की है। वे लिखते हैं कि:—

"केवल एक बुरी बात अब तक जड़ से नहीं गई यद्यपि सरकार उस के मिटाने में बहुत उद्यम और परिश्रम कर रही है तथापि होही जाती है। अर्थात् कोई दुष्ट राजपूत अपनी लड़कियों को मार डालते हैं जिस में किसी का * * * न बनना पड़े। पहले तो जीव का सताना ही बुरा है, जिस में पञ्चेन्द्रिय आदमी को मारना, जिस में भी स्त्री को और तिस में भी ऐसी अवस्था में कि जिसे देख कर राक्षस को भी दया आवे और जिस का हाल सुन कर पत्थर भी पसीज जावे और तिस में भी आत्मजा लड़की को ? हम नहीं जानते कि ऐसे आदमियों को कैसी सज़ा देनी चाहिये, फांसी तो इन के वास्ते कुछ भी नहीं है। ये अपनी पूरी सज़ा को तभी पहुंचेंगे जब रौरव नरक की अग्नि में जलेंगे" (देखो भूगोल हस्तामलक प्रथम भाग पृष्ठ ५२)॥

परमात्मा दीन बन्धु हैं और उन की न्यायव्यवस्था के अनुसार मनुष्य तो क्या, बड़े से बड़ा प्राणी भी, दूसरे, छोटे से छोटे जीव को कष्ट पहुंचा कर उस का प्रतिफल पाये विना नहीं रह सक्ता। पुनर्जन्म के सिद्धान्त पर दृढ़ विश्वास रखते हुए यदि हम यह कल्पना करलें कि उन द्विजाती-पुत्रों एवं अबोध-राजपूत-कन्याओं ने ग़ज़नी और ग़ोर के यवनकुलों में अपने निर्दोष बध किये जाने का बदला लेने को जन्म धारण किया तो कुछ भी अनुचित न होगा। निदान यावनी सैन्य-समूह-रूपी प्रचण्ड-वायु के भयङ्कर झोंके बड़े प्रबल वेग से भारत में एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक चलने लगे, जिन्हों ने भारतवर्ष के स्वाधीन-सम्राट् महाराराज पृथ्वीराज के भौतिक-शरीर और राज्यश्री के साथ ही भारत के स्वातन्त्र्य की स्वल्प-काष्ठ से

उत्पन्न हुई अग्नि-शिखा को सदा, सर्वदा के लिये प्रशान्त कर दिया। यद्यपि पीछे अनेक महान् आत्माओं ने उस वह्नि को प्रदीप्त करने की चेष्टायें कीं परन्तु समाज में इतने दोष उत्पन्न होगये थे कि उन प्रचण्ड-वायु-वेगों को रोकने के साधन न मिलने से वह आरम्भिक दशा में ही शान्त हो २ गई। एक ओर महाराणा प्रताप जैसे वीर, दृढ़प्रतिज्ञ सदाचारी और तपस्वी विरले पुरुष भारत को स्वाधीन करने का प्रयत्न करते थे तो दूसरी ओर राजा मानसिंह प्रभृति अनेक क्षीण और लोभी पुरुष यवनों को अनुचित रीति पर प्रसन्न करके बड़े २ पदों पर विराजमान हो रहे थे, निदान यवनों की कुटिल रीति से यह जाति अपने अस्तित्व को बहुत कुछ विस्मरण कर बैठी और आलमगीर के समय में, जयपुराधीश जयसिंह और जोधपुर नरेश जसवन्तसिंह, स्वतन्त्रता के दो टिमटिमाते हुए दीपक ही भारत में अवशिष्ट रह गये, जो इन वायु-वेगों के सामने विशेष काल तक अपनी स्थिति संसार में न रख सके। निदान इन दोनों की मृत्यु के पश्चात् राजपूत जाति से स्वतन्त्रता का किञ्चिदवशिष्ट अंश भी सदा के लिये पृथक् होगया और तत्पश्चात् भारत की महाराष्ट्र और सिक्ख जातियों का सितारा चमका जिन का इस पुस्तक से कोई सम्बन्ध नहीं है।

कबीर मत तथा उसकी अन्य शाखा प्रशाखाओं का वृत्तान्त।

रामानुज के शिष्यों में अलीनूर जुलाहे का बेटा कबीर बहुत प्रसिद्ध हुआ जिसने नीच वर्णस्थ पुरुषों को अपने मत में मिलाने का, अपने गुरु और आचार्यों से भी अधिक प्रयत्न किया, परन्तु वह अपने गुरुओं से केवल एक बात में विरोध रखता था अर्थात् मूर्त्ति का खण्डन करता था। कबीर के मरते ही उसके चेले तिलक लगाने, चन्दन की कण्ठी बांधने आदि २ चिह्नों को मुक्ति का साधन मानने लगे। कबीर के प्रचार का समय सन् ईसवी १३८० और १४२० के मध्य अनुसन्धान से ज्ञात होता है।

कबीर के कई चेले थे परन्तु उन में सिक्खमत का प्रवर्त्तक नानकशाह बहुत प्रसिद्ध हुआ है जिसने मूर्त्तिपूजा का खण्डन और एक ब्रह्म का उपदेश दिया, किन्तु वेदों से विमुख होने के कारण इस मत के अनुयायी भी पुस्तक को भोग लगाने, उसकी सवारी निकालने, उस

पर चँवर ढुलाने और उसकी आर्त्ती करने आदि वैष्णव धर्म के समान पोपलीलाओं में फँस गये।

वैष्णव मत का एक प्रचारक चेतन भी हुआ है जो कि सन् १४८५ में उत्पन्न हुआ था, बंगाल और उड़ीसा में इसने वैश्णव मत का प्रचार किया, भक्ति, विश्वास और जगन्नाथ की पूजा का प्रचार करना इस का मुख्य उद्देश्य था। इसके चेले इसे विष्णु का अवतार मानने लगगये।

इसी मत का आश्रय लेकर बल्लभ स्वामी ने राधा और कृष्ण की मूर्त्तियों की शिक्षा दी, और इस मत के अनुयायी गोकुलिये गुसाईं कंठी बांधते हैं, 'श्री कृष्णः शरणं मम' आदि मन्त्रों का उपदेश करके चेले और चेलियों के मूंड़ने में प्रवृत्त रहते हैं, और शिष्याओं को समर्पण कराते हैं। गुसाईं लोग स्त्रि-प्रसंग बहुत करते हैं और अभीष्ट की सिद्ध्यर्थ इन्होंने ऐसे श्लोक गढ़ लिये हैं।

सहजा देशकालोत्था लोकवेदनिरूपिता। संयोगजाः स्पर्शजाश्च न मन्तव्याः कदाचन ॥१॥ अन्यथा सर्वदोषाणां न निवृत्तिः कथञ्चन। असमर्पित वस्तूनां तस्माद्वर्जनमाचरेत् ॥२॥

अर्थात् (सहज) जो काम क्रोधादि से उत्पन्न होते हैं (देश का०) जो किसी देश काल में किये जायं (लोक) भक्ष्याभक्ष्य आदि (वेद) मिथ्या भाषणादि (संयोगज) भगिनी कन्या, पुत्रवधू, गुरुपत्नी आदि से समागम (स्पर्शज) अर्थात् चाण्डाल आदि का स्पर्श करना; इन पांच दोषों को गुसाईं लोग कभी न मानें ॥१॥ गुसाईं मत से भिन्न अन्य कोई मार्ग निवृत्ति का नहीं इस लिये अपनी कोई वस्तु भी (चाहे स्त्री ही क्यों न हो) उन के चेले गुसाईं जी को समर्पण किये विना कदापि न भोगें ॥२॥

शिवदयालु सिंह खत्रिय ने जो सन् १८१८ में आगरे में उत्पन्न हुए और सन् १८७८ में मरे अपनी स्त्री राधा बाई के नाम से एक राधास्वामी नामका मत चलाया और कबीर, दूलान, जगजीवन, चरन-दास, तुलसी, दादू दरिया, सूरदास, नाभा जी, भीका जी, ईतनी सूफी, और मौलाना रूम आदि पुरुषों के वचनों को पुस्तक में संग्रह करके उसका प्रचार करने लगे। यह स्त्रियों को भक्तिमार्ग का उपदेश करते और गुरु की झूठन खाने को ही मुक्ति का साधन समझते हैं इस लिये राधास्वामी को ईश्वर से भी बड़ा मानते हैं।

ब्राह्म समाज का संक्षिप्त वर्णन, वेदों के उद्धारक ब्रह्मर्षि दयानन्द सरस्वती जी का शुभागमन और अवैदिक मतों का खंडन

यद्यपि सन् १८३० ई० के लगभग राजा राममोहनराय ने ईश्वर तथा वेदों के आधार पर ब्राह्म समाज की बुनियाद डाली परन्तु वेद वेदांगों के ज्ञाता न होने के कारण ब्राह्म समाजी लोग ईसाई मत की ओर झुक गये। जिस समय भारत में, यह नाना प्रकार के वेद विरुद्ध मत फैल रहे थे, ईसाइयों को अपने गल्ले भरने का खूब अवसर मिल गया था, क्योंकि ये मत ईसाई मत के प्रतिरूप (मुलम्मे) की चमक, दमक के सामने निस्तेज हो रहे थे। निदान ऐसे कठिन समय में वेद, वेदांगों के पूर्ण ज्ञाता, योगिराज **ब्रह्मर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज** ने **वैदिक मार्त्तण्ड** का प्रकाश संसार को दिखाने का कठिन व्रत धारण किया और १६ वर्ष के अविश्रान्त परिश्रम से, वैदिक भुवन-भास्कर के आवरण को दूर कर के, न केवल अवैदिक मतों को निस्तेज कर दिया, वरञ्च उसके उत्ताप से ईसाई धर्म के प्रति रूप का कृत्रिम रंग शीघ्र ही उड़ा कर उसकी वास्तविक आकृति सब को दिखला दी। महर्षि के उपकारों का जो उन्होंने सामान्यतया संसार और विशेषतया आर्य्यजाति पर किये हैं सविस्तर वर्णन करने को ऐसी शत पुस्तकें भी अलम् नहीं हो सक्तीं इस लिये उनके कार्यों का अवलोकन उनकी जीवनी से ही ज्ञात करने का सङ्केत कर के, इस विषय को, हम, यहीं समाप्त करते हैं।

आगरा २५। १२। १९०७ } **बाबूराम शर्मा**



पुस्तक मिलने का पता:-

बाबूराम शर्मा

प्रबन्धकर्त्ता आर्यभास्कर यन्त्रालय

आगरा.